भूमिका

आचार्य श्री तुलसी जैन श्वेताम्बर तेरापन्थकी गुरु-परम्परा मे नवम पट्टधर आचार्य हैं। पहली भेंट मैं व्यक्तिसे नहीं पा सका, गुरुके ही दर्शन हुए। समय कम था और भेंट कुछ तेरापंथी भाइयोंके आग्रहकी पूर्तिके निमित्तसे हुई थी। मैं बाहरी आदमी था और जिस पूजा और महिमाका वलय मैंने उनके चारों ओर पाया, वह मुझे अनुपेक्षित हुआ। इससे लौटा तो कुछ विशेष भाव मेरे साथ नहीं गया बल्कि कुछ अन्तर रह गया और अरुचि सी हुई।

मेरा मानना है कि आचार्य श्री तुलसीके व्यक्तित्वको पानेमे यह साम्प्रदायिक वातावरण अन्तराय बना रहता है। इससे जो उन्हें प्राप्य है मिल नहीं पाता और हमे देय है, हम दे नहीं पाते

उसके बाद अणुव्रती-संघकी स्थापनाका समाचार अखबारोंमे पढा। संघके व्रतोंने और नियमोंने ध्यान खींचा। संघका पहला अधिवेशन दिल्लीमे हुआ उस समय तेरापन्थी भाइयोंने याद किया और चाहा कि मैं उसमे सम्मिलित होऊं। मैंने अपने में पर्याप्त रुचिका अभाव पाया और क्षमा चाही। उत्सवसे पहले सघकी एक अन्तरंग बैठक थी, उसमे जाना मैंने स्वीकार किया। उस सभाका मुझपर बहुत अच्छा प्रभाव पडा। घंटा भर मैं मूक साक्षी बना बैठा रहा और सभाके विसर्जन पर तुलसीजीसे बात-

चीत हुई। बातचीत खुलकर हुई और मैं मनमें प्रसन्नता लेकर लौटा। उस दिनसे मैं तुलसीजीके प्रति अपनेमें आकर्षण अनुभव करता हूं और उनके प्रति सराहनाके भाव रखता हूं। किसी कारणसे वह सराहना कम नहीं हो सकी है और उस परिचयको मैं अपना सद्भाग्य गिनता हूं।

अनेक मेरे बन्धुओं और हितैषियोंको यह बात समझ नहीं आती। वह कर्मशील हैं और बुद्धिवादी है और मुझको उस कक्षासे बाहर नहीं मानते हैं। सम्प्रदायोंमें और सम्प्रदायगत धर्म-पंथोंमे उन्हें प्रतिगामिता दिखती है। उनके प्रति किसी सराहनाको वे समझ नहीं सकते। वे कृपा करते है और मित्रता मे मुझे सहते है। किन्तु मेरी सराहनाको सहना वे अपना कर्तव्य नहीं मानते और वे ठीक है।

आज विलक्षण युगमे हम रहते हैं। बडा जागरुक और चौकन्ना हमे रहना पडता है। मतवाद वहुत हैं और सब ही हमारी श्रद्धाके दावेदार बनकर सामने आते हैं। ऐसे मे श्रद्धा किस-किसको दी जाय ? परिणाम यह कि सदा और चारों ओर हमें अपनी आलोचनाको जगाये रखना होता है। ऐसे ही हम अपनेको बचाते है। नहीं तो शायद लुट जाय और अपनेको खो बैठे।

जानता हू जमाना ऐसा है। मैं खुद गुरुओंकी उतनी आवश्यकता नहीं देखता जितनी सेवकों की। ज्ञान देनेवाला नहीं, स्नेह और सहानुभूति देनेवाला चाहिए। इसी तरह वादके प्रचार

से श्रमका प्रसार ज्यादा देखनेकी इच्छा होती है। यों आलोचनाको सहसा हाथसे मैं छोडता नहीं हू, फिर भी धर्मके व्यक्तियोके प्रति मेरे मनमे सराहना हो आती है। धर्मके साथ सम्प्रदाय है, पथ हैं, कट्टरता है, रूढिवादिता है। इसके अलावा धर्मके विरोधमे जो तर्क है उनको भी जानता हू। फिर भी सराहना रुक नही पाती है और ऐसा लगता है कि वहा कितनी भी राख हो, पर उस कारण चिनगारीका अपमान कैसे हो सकता है।

मुझे अंधेरा दीखता है। मुझे चिनगारी की खोज है। झमेला बहुत है और दल बहुत हैं जो प्रकाशको उतारनेका दम भरकर सामने आते हैं। उनके कर्तव्य रोज मैदानमें देखता हू। उनसे अन्धेरा छटता नहीं दीखता। वहा चिनगारी होने का भरोसा मुझे नहीं होता। मालूम होता है वह सत्ताका परिवर्तन चाहते हैं और शेप परिवर्तन सत्ताको हाथमे लेकर उसके द्वारा करना चाहते है। वहुत सी योजनायें, लोक-मंगल और जन-कल्याणकी योजनायें, फंड जुटानेमे जुटी हैं। वह तो सब देखता हू, उन सब प्रयत्नोंके वारेमे नास्तिक हू ऐसा भी नहीं, पर मन नहीं भरता। चिनगारीकी माग उनके वाद भी रह ही जाती है।

तुलसीजी को देखकर ऐसा लगा कि यहा कुछ है, जीवन मूर्च्छित और परास्त नहीं है, उसकी आस्था है और सामर्थ्य है। व्यक्तित्वमे सजीवता है और एक विशेषप्रकारकी एकाग्रता, यद्यपि हठवादिता नहीं। वातावरण के प्रति उनमे ग्रहणशीलता है और दूसरे व्यक्तियो और समुदायोंके प्रति संवेदनशीलता।

एक अपराजेय वृत्ति उनमे पाई जो परिस्थितिकी ओरसे अपने मे शैथिल्य लेनेको तैयार नहीं है बल्कि अपने आस्था-संकल्प बल पर उन्हें बदल डालनेको तत्पर है। धर्मके परिग्रह-हीन आकिंचन्यके साथ इस सपराक्रम सिंह-वृत्तिका योग अधिक नहीं मिलता। साधुता निवृत्त और निष्क्रिय हो जाती है। वही जब प्रवृत्त और सक्रिय हो तो निश्चय मनमें आशा उत्पन्न होती है।

यह नहीं कि असहमतिको स्थान नहीं है। वह तो है, लेकिन वह दूसरी बात है। मुख्य यह है कि आचार्य श्री तुलसीके व्यक्तित्वमे मुझे विघटन कम प्रतीत होता है। आचार, उच्चार और विचारमे बहुत कुछ एकसूत्रता है। इसीसे व्यक्तित्वमे वेग और प्रभाव है।

वह आचार्य-पद पर हैं। एक समुदाय और समाज उनके पीछे है। कोई सात सौ साधु-साध्वी उनके आदेश पर हैं। यह एक ही साथ उनकी शक्ति और मर्यादा है। यदि वह आरम्भमें अकेले होते और प्रयोगके लिए मुक्त, तो क्या होता? इस सम्भावना पर कभी कल्पना जाकर रमना चाहती है। लगता है तब मार्ग सरल न होता, पर शायद कठिन ही हम लोगोंके लिए कीमती हो जाता।

जो हो, उनके व्यक्तित्वको प्रकाशमे लानेवाली इस पुस्तकका प्रकाशन समयोपयोगी है। लेखक उनके निकटवर्ती मुनि हैं। पुस्तकमे अध्ययन और विवेचनके चिह्न हैं। साथ ही जैसा कि

अवश्यभावी था, दृष्टिकोण समीक्षासे अधिक स्तुतिका है। किन्तु इसके उपयोगसे और दूसरी आवश्यक सामग्रीके संयोजनसे यदि श्री तुलसीके व्यक्तित्व पर समीक्षा-पूर्ण विवेचनात्मक पुस्तक निकल सके तो यह और भी उपयोगी होगा। कारण, मैं उस व्यक्तित्वमे सभावनायें देखता हू।

ऋषिभवन, ८ फैजबाजार,
दिल्ली, १८।१२।५२,

आचार्य श्री तुलसी (जीवनपर एक दृष्टि) के प्रकाशन मे सरदारशहर निवासी श्रीमान् हनुमानमलजी इन्द्रचन्दजी चोरडिया ने अपने स्वर्गीय पूज्य पिता श्री भीकनचन्दजी चोरडिया की पुण्य-स्मृतिमें नैतिक सहयोगके साथ आर्थिक योग देकर अपनी सास्कृतिक व साहित्यिक सुरुचिका परिचय दिया है जो सबके लिए अनुकरणीय है। हम आदर्श-साहित्य-संघ की ओरसे सादर आभार प्रकट करते हैं।

—शुभकरण दशानी

प्रकाशन मन्त्री

विषयानुक्रम

आचार्य-जीवन

आचार्य श्री तुलसी

(जीवन पर एक दृष्टि)

विश्वको गतिविधि

आज विक्रम सम्वत् २००८ है। मुझे विक्रम सम्वत् १९७१ तक मुडना है। बीचके इन ३७ वर्षोंमे जो कुछ हुआ, मुझे नया लगा, आश्चर्यकारी जचा, उस पर लिखू, जी चाहता है।

विश्व के चित्रपट पर नये-नये रग खिले और मिट गये। साम्राज्यवाद भूमिसात् हुआ जा रहा है। सामन्तवादकी जडें हिल गई। पूजीवाद लडखडा रहा है। जन और जनताका घोप एक छोरसे दूसरे छोर तक टकरा रहा है। इधर और उधर चारो ओर लाल क्रातिकी बातें है। यह कोई नई बात नहीं, इस पर क्या लिखू।

यह दृश्य जगत्की बात हुई। अब आन्तरिक जगत्की ओर चलिए। वहा भी कुछ हुआ है—लोगोकी श्रद्धा हिल गई, धर्म

अभिशाप बन गया, दिल और दिमाग धीरज खो बैठे। समयकी गति टेढी है। कल तक नहीं हुआ, वह आज हो जाता है, इस पर क्या आश्चर्य किया जाय।

प्रकाशमे अन्धकार आए यह आश्चर्यकी बात नहीं, दुनियां का स्वभाव ही ऐसा है। अन्धकारमे प्रकाशका पुञ्ज दिखाई दे, यह आश्चर्यकी बात है।

आजकी दुनिया बुरी तरहसे राजनीतिके पीछे पडी हुई है। वह उसीमेसे सुख और शान्तिका स्रोत निकालना चाहती है। पर यह होनेकी बात नहीं। सुख और शान्ति ये दोनों प्राणीकी वृत्तियोंमे रहते है, अनुभूतिमे रहते है, संक्षेपमे—चैतन्यमे रहते है। राजनीतिके पास वह नहीं है, उसके पास है—धन और भूमि, सत्ता और अधिकार, एक शब्दमे – जडता। मूलमे भूल है, इसीलिए सही मार्ग मिल नहीं रहा है। भगवान् महावीर जैसे अहिंसाप्रधान और महात्मा बुद्ध जैसे करुणाप्रधान पुरुष इस धरती पर आए, फिर भी इसका दिल नहीं पसीजा। ईसा-मसीह जैसे दयालु और महात्मा गाधी जैसे विराट् पुरुषको इसने नहीं अपनाया। हिंसासे अहिंसा, घृणासे करुणा, स्वार्थसे दया और साम्प्रदायिकतासे विराट्ता दवी जा रही है। आखिर एक दिन मनुष्य सोचेगा कि मार्ग इस धरती पर है नहीं।

एकतन्त्र और जनतन्त्रका संघर्ष छिडा। जो भूल थी, वह नीचे गिरी और जो सुधार था, वह आगे बढा। जनतन्त्र और साम्यतन्त्रका संघर्ष चल रहा है। देखे, कौन कहा जा बैठता है।

साम्यवाद भी आगे चल किसी अपने अनुजसे संघर्ष मोल न ले, यह माना नहीं जा सकता। इसमे भी सत्ता और पूंजीका एक-छत्र राज्य है।

एकके बाद दूसरी सत्ता और एकके बाद दूसरे वाद आये। उनसे सुख-शान्तिका द्वार नहीं खुला तो उनके हृदयमे धड्कन कैसे बनी रही ? यह एक प्रश्न है। इसका उत्तर पानेके लिए विशेष गहराईमे जानेकी जरूरत नहीं। उनसे कुछ नहीं बना या बनता यह नहीं, उनसे मनुष्यको रोटी मिली, मकान मिला, सुरक्षा मिली, जीवन चलानेवाले साधन मिले, पर जो इनसे आगे है (सुख-शान्तिका मार्ग), वह नहीं मिला।

मनुष्यके उर्वर मस्तिष्कने खोज की। मनका बन्धन तोडा। उसने पाया कि जीना ही सार नहीं, जीनेका सार है जीवनका विकास करना। बस इसी विचारधाराने धर्म और अध्यात्मवाद को जन्म दिया। एक विद्यार्थीने आचार्य श्री तुलसीसे पूछा—"शान्ति कब होगी ?" आपने उत्तर दिया—"जिस दिन मनुष्य मनुष्यता आ जायगी।" मनुष्य अपनी सत्ताको समझे बिना जाने-अनजाने मनुष्यतासे लड़ता आ रहा है। मानवताका पुजारीवर्ग उस मनुष्य आकारवाले बेभान प्राणीको समझाता आ रहा है। लाखों करोडों वर्ष बीते, फिर भी वह लडाई ज्यों की त्यों चालू है। दोनोंमेंसे न कोई थका, न कोई थमा, यह आश्चर्य है। इस पर लिखूं—ऐसा मेरा संकल्प है।

विषय-प्रवेश

मूल बात यह है, मुझे आचार्य श्री तुलसीके जीवनका अध्ययन करना है। कहा तक सफल हो सकूगा, इसकी मुझे चिन्ता नहीं। मैं सग्राहक हू, पारखी नहीं। तथ्योका संकलन करना मेरा काम है, कसौटी बननेके लिए मैं दुनियांको निमन्त्रण दूंगा। इसलिए दूंगा कि इससे उनके जीवनका सम्बन्ध है, जो मनुष्याकार प्राणीसे लडनेवाले वर्गके प्रतिनिधि है। आजके मानवकी दृष्टिमे सबसे जटिल समस्या रोटी और कपडे की है। आप इससे सहमत नहीं। आपने एक प्रवचनमे कहा—"रोटी मकान और कपडेकी समस्यासे अधिक महत्त्वपूर्ण समस्या मानवमे मानवताके अभावकी है।" भौतिकवाद और अध्यात्मवादके बीच यह एक बडी खाई है। इनकी सन्धि– समझौता सम्भव नहीं लगता।

अध्यात्मवादकी दृष्टि यह है—रोटी मुश्किल नहीं अगर तुम उसके पीछे न पड़ जाओ। वह तुम्हारे श्रमका परिणाम है, तुम्हें न मिले यह कैसे हो ? भौतिकसे परे भी कुछ है, इसे मत भुलाओ। जीवनकी लम्बी शृङ्खला एकदम टूट जायेगी, क्या यह संभव है ?

शोषण और विषमता जो बढ़े, उसका कारण हिंसा है। हिंसा से हिंसा मिटानेकी जो सूझ आ रही है, वह गलत है।

अहिंसा पूर्ण समतावाद है। इसके भाव आवें तो न शोषण रह सकता है और न वैषम्य। व्यष्टिका ममत्व और संग्रह समष्टिमें चला जाये, इससे मूलभूत समस्याका समाधान नहीं हो सकता।

हिंसा और अहिंसाके द्वन्द्वकी चर्चा करते हुए एक बार आपने कहा—

"हिंसाकी भांति अहिंसा सफल नहीं हो सकती, कई लोगों की ऐसी धारणा है। परन्तु यह उनका मानसिक भ्रम है। आज तक मानव-जातिने एक स्वरसे जैसा हिंसाका प्रचार किया, वैसा यदि अहिंसाका करती तो स्वर्ग धरती पर उतर आता। ऐसा किया नहीं गया, फिर अहिंसाकी सफलतामें सन्देह क्यों ?"

यह सच है, भलाई भलाईसे मिलना नहीं जानती, बुराईको बुराईसे मिलनेके रहस्यका ज्ञान है। अगर दुनियाकी सब अहिंसक शक्तियां मिलजुलकर कार्य करें, सहयोग-भाव रखें तो आज भी अहिंसा हिंसाको चुनौती दे सकती है। मानव मूलतः अहिंसाका अखण्ड पिण्ड है। वह विकारी बन हिंसक बनता है। अहिंसा

उसका स्वभाव है और हिंसा विभाव। जब उसकी हिंसा उग्र बन जाती है, दूसरोंके लिए असह्य हो जाती है, तब वह अहिंसाकी ओर देखता है। गत दो महायुद्धोंने ऐसी स्थिति पैदा की है। उससे क्लान्त हो बहुत सारे कट्टर हिंसावादी अहिंसामे विश्वास करने लग गये।

अहिंसक समाजके लिए आजका युग स्वर्ण-युग है। आज भूमि तैयार है। उसमे अहिंसाका बीज सुलभतासे बोया जा सकता है। यदि समयका उपयोग नहीं किया गया तो फिर जो होता है, वही होगा।

एक प्रेरणा

तरुण तपस्वी आचार्यश्री तुलसी अहिंसाके महान् सेनानी हैं। आपके अहिंसा-आन्दोलनने फिर हिंसाको पैर हिलाये हैं। सुदूर पूर्व और पश्चिमसे यह जिज्ञासा आई कि यह क्या कुछ हो रहा है? इसका कर्तृत्व किसके हाथोंमे है, आदि आदि? अच्छा हो कि इस जिज्ञासाका समाधान मै करूं।

मुझसे आपके जीवन, उसकी अनुभूतियों एव कृतियोका विश्लेपण होना सम्भव नहीं लगता, फिर भी मेरा यत्न आत्म-सन्तोपके लिये पर्याप्त होगा।

आज आपके जीवनका चौथा अध्याय चल रहा है। यह परिच्छेद आपके जीवनकी घटनावलियोके आधार पर होता है।

जीवनकी बातें

आप वि० स० १९७१ मे जन्मे। ११ वर्प तक घर पर रहे। उसके बाद वि० स० १९८२ मे

आप परम पूजनीय आचार्यश्री कालुगणीके शिष्य बने। ११ वर्ष उनकी चरण-सेवामे रहकर आपने शिक्षा ग्रहण की। २२ वर्षकी अवस्था (वि० सं० १९९३) मे कालुगणीने आपको आचार्य-पद का भार सौंपा। उसके बाद आपने ११ वर्षका अपना अधिकाश समय और चिन्तन साधु-समाजके बहुमुखी विकासकी ओर लगाया। चालू अध्याय जन[1]-जीवनके जागरणका उद्देश्य लिये हुए है। यह आपका जीवन-वृत्तान्त है।

१—इस विषयकी विशेष जानकारीके लिए देखो जयपुर यात्रा, पंजाब यात्रा व दिल्ली-यात्रा।

बाल-जीवन

जिज्ञासाका स्रोत—व्यक्तिका व्यक्तित्व

कोई व्यक्ति कब और कहाँ जन्म लेता है, कैसे उसका लालन-पालन होता है, इसमे अपनेआप जिज्ञासा पैदा नहीं होती। व्यक्तिका अपना व्यक्तित्व ही उसमे जिज्ञासा भरता है। व्यक्ति जब व्यष्टिकी सीमा तोडकर समष्टिमय बन जाता है, तब उसके प्रत्येक कार्यकी जानकारी अभिप्रेत हो जाती है। आचार्य श्री के पट्टोत्सवका अभिनन्दन करते मैंने एक बार लिखा था—

"जबतक तुम इस 'तुम' के भीतर, बँधे हुए थे स्वामी !
तबतक तुम 'तुम' में पलते थे, थे अपने तनके स्वामी ॥१॥
कौन तुम्हारी अर्चा करने, कब कहा था आया ?
किसने इन कोमल चरणो में, था अपना शीश नवाया ॥२॥
जब तुमने सद्‌बोधि लाभ कर, 'तुम' की मर्यादा तोडी।
जन-जन के अन्तर मानस से, ममता समान जाडी ॥३॥

स्वामी ! तब से बनपाये हो, जन-मन के अधिकारी।
अन्तर्यामी बनपाये हो, जन-जन की बलिहारी ॥४॥

आचार्यश्रीके व्यक्तित्वकी झाकी पानेके साथ-साथ अगर पाठककी कब, कहाँ और कैसेकी जिज्ञासा शान्त नहीं होगी तो वह उसके प्रति असहयोग होगा। इसलिए मुझे वर्तमान तक पहुंचने से पहले अतीत पर भी एक सरसरी दृष्टि डाललेनी चाहिए।

वह अतीत, जो उज्ज्वल वतमानकी शृङ्खलाका संकलन करता है, जिसके गर्भमे सारी शक्तिया छिपी रहती है, क्या वह अभिव्यक्तिके बाद भुलानेकी वस्तु है ? नहीं। जो व्यक्ति अपने अतीतके अध्यायको नहीं पढता, कार्य-कारणके परिणामों पर दृष्टि नहीं डालता, जागृति और अभ्युदय, भूल और सुधारके पन्नोंको नहीं उलटता, वह सफल मानव नहीं बन सकता। मानव किस रूपमे आता है और क्या से क्या बनता है, यह अतीत ही बता सकता है।

सफलता का पाठ

हाँ, तो आचार्यश्री का जन्मकाल बीसवीं शताब्दी (वि० सं० १९७१ कार्तिक शुक्ला २,) है।

अपने पूर्वजोंसे स्वयंको अधिक विकसित, सभ्य और सुसंस्कृत मानना, यह इस शताब्दीकी सबसे बड़ी विशेषता है। इससे 'श्रद्धा' की कैसी स्थिति बनती है, यह आप स्वयं समझ सकते है। आजका आदमी पुकार रहा है 'श्रद्धा' की कमी हो गई। क्यों हुई, इस पर भी जरा सोचे।

बीसवी सदी की विशेषता

आपकी जन्मभूमि लाडनू—जोधपुर डिवीजन—राजस्थान है। वह राजस्थान जो शुष्क और ग्रीष्मप्रधान होनेके उपरान्त भी आध्यात्मिक स्रोतो की सिंचाईसे हरा-भरा है।

जन्म भूमि

पारिवारिक स्थिति

एक सम्पन्न ओसवाल-परिवारमे आप जन्मे। आपके पिताश्रीका नाम झूमरमलजी और माताश्रीका नाम वदनाजी है। आपने अपने 'अतीतके कुछ सस्मरण' शीर्षकसे बाल-जीवनकी स्मृतिया लिखीं। इनसे आपकी तात्कालिक पारिवारिक स्थिति का सजीव चित्र सामने आ जाता है .—

"मेरे संसारपक्षीय दादा राजरूपजी और पिता झूमरमलजी का देहावसान क्रमश मेरी तीन और पाच वर्षकी अवस्थामे हो चुका था। मेरे दादाजी दृढ़-संहनन, विशालकाय, प्रसिद्धखुराक, धर्मप्रेमी और बड़े प्रतिष्ठित थे। मेरे पिताजी सरल प्रकृतिके थे। उनके अन्तिम वर्षोंमे संग्रहणीकी बीमारी हो गयी थी। परिवार बडा था। पिताजी कभी-कभी चिन्ता करने लगते कि अभी तक कोई ऐसा 'कमाऊ' व्यापारकुशल नहीं है, घरका काम कैसे चलेगा ? तब दादाजी कहते—क्या चिन्ता है ? परिवारमे कोई

एक ऐसा जीव पैदा होगा, जिसकी पुन्याईसे सब चमक उठेंगे।

मातاजी वदनाजी प्रारम्भसेही बडे शुद्धहृदय और सहज सरल स्वभाववाली थीं। वे दादाजी, दादीजी और मेरे पिताजी की बडी भक्तिसे सेवा करती रहीं। समूचे परिवारका पोषण, बुजुर्गोंकी सेवा, घरका सरक्षण आदि काम करनेमे उन्होने अच्छा यश प्राप्त किया।

हमारे छ भाइयोमें बडे भाई मोहनलालजी थे। पिताजीके गुजर जानेके बाद समूचे घरका भार उनपर आया। उस समय हमारा घर कर्जदार था। परन्तु मोहनलालजी बडे साहसी और अच्छे विचारक रहे है। उन्होंने अपनी कमाईसे समूचा कर्ज चुका कर घरको स्वतन्त्र बनाया। हम सब भाई मोहनलालजी को पिताके तुल्य समझते थे। मैं तो उनसे इतना डरता था कि उनके सामने बोलना तो दूर रहा, इधरसे उधर देखनेमे भी सकुचाता था।"

हिन्दुस्तानमे चिरकालसे संयुक्त पारिवारिक प्रथा चली आ रही है। एक मुखियाके संरक्षणमें रहना, अनुशासन और विनयका पालन करना, नम्र-भाव रखना, बडोंके सामने अनावश्यक न बोलना, हंसी-मजाक न करना आदि आदि इसकी विशेषताएं हैं। झूमरमलजीकी अपने परिवारके लिए चिन्ता करना, अन्य भाइयों द्वारा मोहनलालजीको पितातुल्य समझना, उनसे सकुचाना आदि आदि इस संयुक्त पारिवारिक प्रथाके पीछे रही हुई भावनाके परिणाम है। परिवारका लालन-

पालन, घरकी सार-सम्हाल, बुजुर्गोंकी एवं पतिकी सेवा करना भारतीय नारीकी आदर्श परम्परा रही है। वदनाजीके गृहस्थ-जीवनमें उसके पूर्ण दर्शन होते है।

व्यक्तिगत स्थिति

परिवारकी स्थितिका व्यक्तिके हृदय पर प्रतिबिम्ब पडता है। बालककी अपनी निजी विशेषताएं होती हैं। फिर भी परिवारके सदस्य और विशेषत मा के कार्य-व्यवहार एव आचार-विचार वालकके दिलको सीधे तौर पर छुए बिना नहीं रहते।

आचार्यश्रीने अपने सस्मरणोंमे लिखा है—"मेरी माताजीकी अधिक धार्मिक प्रकृति होनेके कारण सभी घरवालोंमें और मुझमे भी अच्छे धार्मिक सस्कार गहरे जम गये। रोजाना सतियोंके[1] दर्शनके लिए जाना, उनका व्याख्यान सुनना, सेवा करना आदि कार्योंमे वडी दिलचस्पी रहती थी।

---

१ लाडनूमें वृद्ध साध्विया स्थायी रूपसे रहती है, इसलिए विशेष-रूपमें उन्हीका नामोल्लेख किया गया है।

मैं कभी व्याख्यानमे नहीं जाता तो भी माताजीसे पूछता रहता—'आज क्या व्याख्यान बंचा, क्या बात आई ?"

"मुझे बचपनसे ही बीडी, सिगरेट, चिलम, तम्बाकू, भाग गाजा, सुल्फा, शराब आदि नशीली वस्तुओंका परित्याग था। मैंने पान तक कभी नहीं खाया।"

बालकके लिए माता सच्ची शिक्षिका होती है बच्चा माके प्यार दुलार और लालन-पालनका ही आभारी नहीं बनता, उसकी आदतोंका भी असर लेता है। गर्भकालसे ही माताका रहन-सहन, खान-पान, चाल-चलन बच्चेको प्रभावित करने लग जाते है। इसीलिए शरीर-शास्त्रियोने गर्भवती स्त्रीको सात्विक आहार, सात्त्विक विचार और सात्विक व्यवहार करनेकी बात बताई हैं। और इसीलिए ये वेचारे शिक्षा-शास्त्री चीख-पुकार करते हैं कि अशिक्षित माताएं बच्चोंके लिए अभिशाप हैं। उनके हाथोंमें बच्चोंके उज्ज्वल भविष्यका निर्माण नहीं हो सकता। यह सही है।

वदनाजीके आचार-विचारकी आचार्यश्रीके हृदय पर अमिट छाप पडी और उससे संस्कार उद्‌बुद्ध हुए, इसमे कोई शक नहीं। मध्यकालीन भारतीय माताओमे स्कूली पढाईकी पद्धति नहीं रही। फिर भी वे परम्परागत रीति-रस्मोंमे बडी निपुण होती थीं। उनके संस्कारी हृदयोंको हम अशिक्षित नहीं कह सकते। आचार्यश्रीसे कई बार यह सुना कि वदनाजी बालकोंकी चिकित्सा अपने आप कर लेतीं।

भारतीय साहित्यमे सत्पुत्र वह माना गया है, जो मा-बाप

अथवा गुरुसे प्राप्त सम्पत्तिको वढाये। यह वात हम आचार्यश्री के जीवनमे पाते हैं। वीजरूपमे मिले हुए सस्कारोको पल्लवित करनेमे आपने कुछ उठा नहीं रखा। वचपनमे ही आपने अध्ययन, अध्यापन, अनुशासन, परोपकार और सचाईकी पुष्ट परम्पराएं पूर्ण विकसित कर लीं। मैं इनके कुछ उदाहरण आचार्य श्रीके शब्दोंमे ही उपस्थित करूंगा :—

"विद्याध्ययनमे मेरी रुचि सदासे रही। मैं जव ६-७ वर्षका था, तव स्थानीय नन्दलालजी ब्राह्मणकी स्कूलमे पढने जाया करता। फिर कुछ दिनों वाद हीरालालजी वज जैनके वहां पढ़ता था। तव मैंने हिन्दी, हिसाव आदि पढ़े। मैंने इङ्गलिशकी 'ए-वी-सी-डी' भी नहीं पढी। मुझे पाठ कण्ठस्थ करनेका वडी शौक था। उस (पाठ) का स्मरण भी वहुधा करता रहता। मुझे याद है कि मैं खेल-कूदमे भी वहुत कम जाया करता। जव कभी जाता तो खेलनेके साथ-साथ पाठका भी स्मरण करता रहता। पच्चीस वोल, चर्चा, हितशिक्षाके पच्चीस वोल, जाणपणाके पच्चीस वोल, नमस्कार-मंत्र, सामायिक, पंचपद-वन्दना आदि मेरे छुटपनसे ही कण्ठस्थ थे।

जव मैं स्कूलमें पढता, तव और लडकोको पढाया भी करता। मेरे जिम्मे कई लडके लगे हुए थे। उनकी देख-रेख भी मै करता। स्कूलमे जितने लडके पढते, उनके जो भी कोई अपराध हों, लिखे जाते और शामको मास्टरजीको दिखलाये जाते। यह काम भी मेरे जिम्मे कई दफा रहता था। स्कूलमे विक्रयार्थ जितनी पुस्तकें

आती, उनका हिसाब (विक्रय, मूल्य-संयोजन आदि) मेरे पास रहता। अनुशासन व अध्यापन ये दो कार्य बचपनसे ही मेरे आदतरूप बन गये थे। इसी कारण तथा अन्य कई कारणोंसे भी मेरी पढाईमे काफी कमी रही। अर्थात् दश वर्षमे जितनी पढ़ाई होनी चाहिये थी, नहीं हो पाई।

सचाईके प्रति मेरा सदासे अटूट विश्वास रहा है ! मुझे याद है कि एक दिन मोहनलालजीकी बहू (बडी भाभी) ने मुझसे कहा—'मोती[1]। ये पैसे लो, बाजारमे जा कुछ लोहेके कीले ला दो। नेमीचन्दजी कोठारी, जो मेरे मामा होते थे, मैं उनकी दूकान गया। उन्होने पैसे बिना लिये ही मुझे कीले दे दिये। वापिस आके मैंने वे भाभाको दे दिये और साथ-साथ पैसे भी दे दिये। यदि मैं चाहता तो पैसोंको आसानीसे मेरे पास रख सकता था, फिर भी सचाईके नाते मैंने वे नहीं रखे।"

मनोविज्ञान बताता है कि पाच वर्षकी अवस्थासे ही भावी जीवनका निर्माण होने लग जाता है। बालककी सहज रुचि अपने भविष्यकी ओर संकेत करती है। आप जानते हैं कि निर्माणमे अडचनें भी कम नहीं आती। सन्धि-वेलामें विकास और ह्रासका विचित्र संघर्ष होता है। अन्तिम विजय उसकी होती है, जिसकी ओर बालकका कर्तृत्व अधिक झुकता है। आचार्यश्रीके जिस बाल-जीवनकी पाठकोंने स्वर्णिम पंक्तिया

---

१ मारवाड मे भाभी अपने देवरके सम्बोधनके लिए 'मोती' शब्दका प्रयोग करती हैं।

पढीं, उसमे कुछ विषादकी रेखायें भी हैं। इन्होंने विषाद पर विजय पा ली, यह दूसरी बात है, फिर भी इनका द्वन्द्व कम नहीं हुआ, प्रबल था।

संस्मरणकी कुछ पंक्तियां पढिए :—

"मुझे बचपनमें गुस्सा बहुत आया करता था। जब मैं गुस्सेमें हो जाता, फिर सबका आग्रह होने पर भी एक-एक दो-दो दिन भोजन तक नहीं करता।"

"मैं प्रकृतिका सीधा-सादा था, दाव-पेचोंको नहीं जानता था। मेरे एक कौटुम्बिकने मुझसे कहा—'ओरण'[1] मे रामदेवजी

नारियलकी चोरी

का मन्दिर है (जहां तेरापन्थके अधिष्ठाता भिक्षु स्वामी विराजे थे), वहा देवता बोलता है। पर उसको नारियल भेंट करना पडता है, अगर तुम तुम्हारे घरसे ला सको तो। मैं एक नारियल चोरी दावे ले आया। हम मदिर मे गये। कोई व्यक्ति अन्दर छिपा हुआ था, वह बोला। हमने बाहरसे सुना और सोचा—देव बोल रहा है। क्या बोला, पूरा याद नहीं। इसी जालसाजीसे बादमे कई नारियल चुराये और औरोंको खिलाये।"

प्रसादकी अपेक्षा विषादकी मात्रा कम है। बहु-मात्रा अल्प मात्राको आत्मसात् कर लेती है, यही हुआ। दैवी-सम्पदाओंके सामने आसुरी संघर्ष चल नहीं सका। गुस्सेका स्थान अनुशासन

---

१ देवाश्रित भूमि

ने और चोरीका स्थान आत्म-निरीक्षणने ले लिया। सत्की संगति पा दोष भी गुण बन जाते है, ऐसा कहा जाता है। संभव है, यही हुआ हो। खैर, कुछ भी हो, आचार्यश्रीके बाल-जीवनमे भी प्रौढता निखर उठी थी, इसमे कोई सन्देह नहीं। बालजीवनोचित लीला-लहरियोमे गंभीरता अपना स्थान किये हुए थी। सहज भावसे बालकोकी रुचि खेल-कूदमे अधिक होती है। पढ़नेमे जी नहीं लगता परन्तु आचार्यश्री इसके अपवाद रहे हैं।

आज विद्यालयोमे पाठ कण्ठस्थ करनेकी प्रणाली नहीं के बराबर है। कई शिक्षाविशारद इसे अनावश्यक और विद्यार्थी भार समझते है। कुछ भी समझें, इस प्रणालीने भारतीय ज्ञान-राशिको अक्षुण्ण रखनेमे बडी मदद की है। लिखनेके साधन कम थे, अथवा प्रथा नहीं थी, उस जमानेमे जैनोके विशाल आगम-साहित्य तथा वैदिकोंके वेद और उपनिषदोंकी सुरक्षा इसीसे हुई है। धार्मिक क्षेत्रमे आज भी इसका महत्त्व है। अगले पृष्ठोंमे आप पढ़ेंगे कि आचार्यश्री ने मुनि-जीवनमे इसका कितना विकास किया। एक राजस्थानी कहावत है—'ज्ञान कण्ठा और दाम अण्टा'। आजके विद्यार्थी पुस्तकोंके बिना एक पैर भी नहीं चल सकते, उसका इसकी उपेक्षासे कम सम्बन्ध नहीं है।

बालक चैतन्यके नवोदयकी भूमि होता है। उसमे शान्ति और क्रान्तिके मेलकी जो अपूर्व लौ जलती है, वह बुझाये नहीं बुझती। बचपनको सीधा और सरल समझा जाता है पर वह अन्तर-द्वन्द्वसे मुक्त नहीं होता। एक ओर बड़ोंकी आज्ञाका

पालन करनेका प्रश्न आता है, दूसरी ओर अपनी भावनाकी रक्षा का। वहा एक बडी टक्कर होती है। विनय नामकी चीज न हो त उसका हल नहीं निकल सकता। आचार्यश्रीको बचपनमे मागनेका नाम बहुत बुरा लगता। एक जगह आप लिखते हैं —

"पहले हमारे घरमे गायें रहती थीं। किन्तु बादमे जब ऐसा नहीं था, तब माताजी पडोसियोंके घरोंसे छाछ माग लानेको मुझसे कहती। मुझे बडी शर्म आती। आदेश पालन करना पडता पर उससे मुझे दुःख होता।"

साधारणतया यह कोई खास बात नहीं है। पडोसियोमे ऐसा सम्बन्ध होता है। फिर भी अपने श्रम पर निर्भर रहनेका सिद्धान्त जिसे अच्छा लगता है, उसे वैसा कार्य अच्छा नहीं लगता। आचार्यश्रीकी स्वातंत्र्य-वृत्ति और कार्य-पटुताका इससे मेल नहीं बैठता। आप ८-६ वर्षकी उम्रमे चाहते थे कि "मैं परदेश (बगाल) जाऊं, बडे भाइयोका सहयोगी बनू।" एक बार मोहनलालजी परदेशको विदा हो रहे थे। तब आपने माताजीके द्वारा उनके साथ जानेकी बहुत चेष्टा करवाई। पर वह सफल नहीं हो सकी। वे सागरमलजी (पाचवें भाई) को साथ ले जाना चाहते थे। आपने कहा—मैं उनसे भी अच्छा काम करूगा। कारण कि आप सागरमलजीसे अपनेको अधिक होशियार समझते थे। प्रयास काफी हुआ किन्तु काम बना नहीं।

उक्त घटना एक बहुत बडी सामाजिक क्रातिका गुप्त बीज है।

भारतीय सामाजिक जीवनमें मांगना और श्रमका अभाव, ये दो दोष घुसे हुए हैं। एक राष्ट्रमें ६०-७० लाख भिखमंगोंकी फौज जो हो, वह उसका सिर नीचा करनेवाली है। अगर मांगनेमे शर्म अनुभव होती हो, अपने श्रम पर भरोसा हो तो कोई कारण नहीं कि एक व्यक्ति गृहस्थीमें रहकर भीख मागे। आचार्यश्रीने बचपनमे ही व्यापार-क्षेत्रमे जाना चाहा। किन्तु वैसा हो नहीं सका। या यों सही कि धर्म-क्षेत्रकी आवश्यकताओं ने आपको वहां जाने नहीं दिया। आप देशमे रहकर विरक्त बन जायेंगे, साधु बननेकी तैयारी कर लेंगे, यह मोहनलालजीको पता नहीं था, अन्यथा वे आपको वहां नहीं छोड जाते।

अकस्मात् सिराजगंज (पूर्वी बंगाल) तार पहुचा—लाडांजी (आपकी बहिन) की दीक्षा होनेकी सम्भावना है, जल्दी आओ। मोहनलालजी तार पढ तुरन्त लाडनू चले आये। स्टेशन पर पहुंचे। उन्होंने सुना - तुलसी दीक्षा लेगा। उन्होंने कहा—मुझे यह खबर होती, मैं नहीं आता। खैर, घर पर आये। घरवालों को तथा आपको भी वहुत कुछ कहा सुना। जो बात टलनेकी नहीं, उसे कौन टाले।

इससे पूर्व आपके चौथे भाई श्री चम्पालालजी स्वामीं दीक्षित हो चुके थे। आप तुरन्त दीक्षा पानेको तत्पर थे। मोहनलालजी आपको दीक्षाकी स्वीकृति देनेको तैयार नहीं हुए।

तेरापन्थकी दीक्षा नियमावलीके अनुसार अभिभावकोंकी लिखित स्वीकृतिके बिना दीक्षा नहीं हो सकती। यह एक समस्या

बन गई। श्रावकोंने, साधुओंने, मन्त्री मुनिश्री मगनलालजी स्वामीने भी मोहनलालजीको समझाया। मोहकी बात है, दिल नहीं माना। वे स्वीकृति देनेको तैयार नहीं हुए। आपने देखा यह बात यों बननेकी नहीं।

लाडनूकी विशाल परिषद्में श्रीकालुगणी व्याख्यान कर रहे थे। आप वहां गये। व्याख्यानके बीच ही खडे होकर बोले—गुरुदेव। मुझे आजीवन व्यापारार्थ परदेश जाने और विवाह करनेका त्याग करवा दीजिए। लोगोंने देखा—यह क्या। परम श्रद्धेय गुरुदेवने देखा—बालकका कैसा साहस है। मोहनलालजी ने देखा—वह मेरा भय और संकोच कहां। विभिन्न प्रतिक्रियाएं हुई। गुरुदेवने कहा—तू अभी बालक है। त्याग करना बहुत बड़ी बात है। आपने देखा—गुरुदेव अब मौन किये हुए हैं। सभा की दृष्टि आप पर टकटकी लगाये हुए है। आश्चर्य और प्रश्नकी धीमी आवाजें उठ रही हैं। साहसके बिना काम होगा नहीं। जो निश्चय कर लिया, वह कर लिया। डरकी क्या बात है। उत्तम कार्य है। मुझे अब अपने आत्मबलका परिचय देना है। यह सोच आप बोले—गुरुदेव। आपने मुझे त्याग नहीं करवाये किन्तु मैं आपकी साक्षीसे आजीवन व्यापारार्थ परदेश जाने और विवाह करनेका त्याग करता हूं।

गुरुदेवने सुना, लोगोंने सुना, मोहनलालजीने भी सुना। बहुतोंने मोहनलालजीको समझाया था, वे नहीं समझे। आपने थोड़ेमे समस्या सुलझा दी। वे आपकी दीक्षाके लिए राजी हो

गये। गुरुदेवसे प्रार्थना की। दीक्षाकी पूर्व स्वीकृति और आदेश दोनों लगभग साथ-साथ हो गये। यह एक विशेष बात है। गुरुदेवसे इतना शीघ्र दीक्षाका आदेश मिलना एक साधारण बात नहीं है। आपको वह मिला, इसका कारण आपकी असाधारण योग्यताके सिवाय और क्या हो सकता है। इसमें कोई सन्देह नहीं, श्री कालुगणिने उसी समय आपकी छिपी हुई महानताका अनुभव कर लिया था। आपके ज्ञाति भी इससे अपरिचित नहीं थे। हमीरमलजी कोठारी, जो आपके मामा होते है, आपसे बड़ा प्यार करते। वे आपको तुलसीदासजी कहकर सम्बोधित करते और कहते—हमारे तुलसीदासजी बड़े नामी होंगे।

प्रकाश प्रकाशमेंसे नहीं निकलता। वह आवरणमेंसे निकलता है। आवरण केवल ढांकना नहीं जानता, हटना भी जानता है। वह अन्धोंको ही दृष्टि नहीं देता, दृष्टिवालोंको भी दृष्टि देता है।

आपका विशाल व्यक्तित्व वचपनके आवरणमे छिपा हुआ था। फिर भी कृतज्ञताके साथ हमें कहना चाहिए कि उसने आपको पहचाननेकी दृष्टि दी।

मुनि जीवन

जीवनका दूसरा दौर

दूसरा अध्याय शुरू होते होते आप द्विजन्मा बन जाते है। गृहस्थ-जीवनकी समाप्ति और मुनि-जीवनकी दीक्षा, दोनों एक साथ होते हैं। हजारो लोगोके देखते देखते आप अपनी वहिन को साथ लिए वैरागीकी पोशाकमे दीक्षा-मण्डपमे आये, कालु-गणीको वन्दना की, पासके कमरेमे गये। वेपभूषा वदली। साधु का पुण्य वेष धारण किया। वापिस आये। दोनो हाथ जोड गुरुदेवके सामने खड़े हो गये। दीक्षा देनेकी प्रार्थनाकी। मोहन-लालजी अपने वन्धुओं के साथ आगे आये। माता वदनांजी आईं। गुरुदेवसे 'श्री तुलसी' को 'लाडा' को दीक्षित करनेकी प्रार्थना की।

गुरुदेवने उनकी स्वीकृति पा दीक्षाका मन्त्र पढा। आजीवन्

के लिए समस्त पापकारी प्रवृत्तियोंका—हिंसा, असत्य, चौर्य, अब्रह्मचर्य और परिग्रहका त्याग कराया। आपने वह स्वीकार किया। गृहस्थ-जीवनसे तांता टूट गया। मुनि-संघमें मिल गये। वह पुण्य दिन था (वि० सं० १९८२, पौष कृष्णा ५), वह पुण्य-वेला थी आपके भविष्य और संघके सौभाग्य-निर्माण की। सब प्रसन्न हुए। कालुगणी, मगनलालजी स्वामी और चम्पालालजी स्वामी अधिक प्रसन्न हुए। क्यों हुए, उसमे रहस्य है।

तेरापन्थके आचार्य अपने यथेष्ट उत्तराधिकारीको पाये बिना पूरे निश्चिन्त नहीं बनते। कालुगणी इस बातकी खोजमे थे। उन्होंने आपको पाकर सन्तुष्टिका अनुभव किया। आपकी दीक्षा उनकी खोजको पूर्ण सफलता थी।

मगनलालजी स्वामी बचपनसे ही कालुगणीके साथी और अभिन्नहृदय रहे। कालुगणीकी इच्छा-पूर्ति ही उनकी इच्छा-पूर्ति थी। इसके सिवाय आपकी दीक्षाके प्रेरक भी रहे। अपनी प्रेरणाकी सफलतामे अधिक खुशी हो, यह स्वाभाविक ही है।

चम्पालालजी स्वामी एक तो आपके भाई ठहरे, वह भी दीक्षित। दूसरे उन्होंने आपको दीक्षा-भावनासे दीक्षा होने तक बड़ा श्लाघनीय प्रयत्न किया। आप उनके इस प्रयत्नको अपने प्रति महान् उपकार मानते है। सम्भव है, उनके प्रयत्नमें कुछ शैथिल्य होता तो इतना शीघ्र दीक्षा-कार्य सम्पन्न न होता। इस लिए वे भी अपनी विशेष प्रसन्नताके अधिकारी हैं।

मैं मूलसे दूर चला गया। मैंने आपकी स्थितिको छुआ तक

नहीं। औरोंकी सम्मिलित खुशीसे आपका पलडा भारी था। उस दिन आपकी कल्पना साकार बनी थी, आपके सपने पूरे हुए थे। आपने एक जगह अपनी पूर्व कल्पनाका जो चित्र खींचा है, उससे मैं पाठकोको वंचित नहीं रखूगा —

"मैं बचपनमे माताजीको पूछता ही रहता—पूज्यजी महाराज कहा हैं? अपने यहा कब आयेंगे? जब कभी पधारते, सचमुच उनकी वह दिव्य-मूर्ति मेरे बाल-हृदयको खींचती रहती। मैं उनके सामने देखता ही रहता। उनका वह कोमल शरीर, गौर वर्ण, दीर्घ संस्थान, सिर पर थोडेसे सफेद बाल, चमकती आखें मैं देखता, तब सोचता - क्या ही अच्छा हो, मैं छोटा सा साधु बन हर वक्त उपासनामे बैठा रहू।"

मनुष्य संकल्पका पुतला होता है। दृढ संकल्पसे एक न एक दिन असाध्य मालूम होनेवाली चीज भी साध्य बन जाती है। आदमीमे धैर्य टिकता नहीं। वह अपने सकल्पको बनाए नहीं रख सकता। थोडी सी कठिनाईसे डिग जाता है। इसलिए वह लक्ष्य तक पहुचनेमें सफल नहीं होता। दृढताके साथ होने वाले सतत मानसिक सकल्पका अपने पर और आसपासके वातावरण पर पूर्ण प्रभाव पडता है। आपकी दीक्षा होनेमे आपके पूर्व संकल्पने पूरा हाथ बटाया, यह हमे निर्विवाद स्वीकार करना चाहिए।

विरक्तिके निमित्त

कालुगणीके व्यक्तित्वका महान् आकर्पण आपकी संसार विरक्तिका सबसे प्रमुख निमित्त बना। आपकी जन्मभूमि तेरापन्थका एक केन्द्र है। विशेषतः आप जिस पट्टीमे रहते, वह धर्म-पट्टीके नामसे प्रसिद्ध है। जन्मगत धार्मिक वातावरण, माताकी दृढ धर्म-श्रद्धा और साधु-साध्वियोंका बहु सम्पर्क, ये सभी बातें उसका पल्लवन करनेवाली हैं। चम्पालालजी स्वामी की सत्प्रेरणाएं भी अपना स्थान रखती है। सबसे बडी बात संस्कारिता है।

हमे यह मानना पड़ता है कि व्यक्तिके संस्कार ही साधन सामग्री पा उद्‌बुद्ध होते हैं और उसी दशामे व्यक्तिके कार्य-क्षेत्र का चुनाव होता है।

मोहनलालजी स्वभावत कुछ विनोद-प्रिय हैं। दीक्षाको पूर्व-रात्रिमे वे आपके पास आये और मीठी मुस्कानमे बोले—लो यह लो। आपने कहा—क्या देते हैं भाईजी! उन्होने कहा—देखो यह सौ रुपयेका नोट है। कल तुम दीक्षा लोगे। इसे साथ लिए जाना। साधु-जीवन बडा कठोर है। कहीं रोटी-पानी न मिले तो इससे काम ले लेना। मोहनलालजीके इस विनोदपूर्ण व्यंग्यसे वातावरण हँसी से महक उठा। आपने हँसते हुए कहा—भाईजी! यह क्या कह रहे हैं? इनका साधु-जीवनसे क्या मेल? आप जानते हैं—साधुको यह रखना नहीं कल्पता। भाई-भाईके हास्यपूर्ण संवाद से आस-पासमे सोनेवाले जाग उठे। आपकी वहिन लाडाजीने पूछा—क्या वात है? इतनी हँसी किस वात की? तुलसीकी परीक्षा हो रही है—मोहनलालजीने कहा।

कसौटी पर

दीक्षाके तत्काल वाद ही आप कालूगणीके सर्वाधिक कृपा-पात्र वन गये। मै कुछ और आगे वढू तो मुझे यों कहना चाहिए कि कालुगणीकी आपके प्रति परिचयके पहिले क्षणोमे जो दृष्टि पहुची, वह अव साकार वन दूसरोंके सामने आई। एक वार मन्त्री मुनि मगनलालजी स्वामीने वताया कि आपके विरक्ति कालमे ही कालुगणीका ध्यान आपकी ओर झुक गया था। आपके पतले-दुवले कोमल शरीरकी स्फूर्ति और विशाल एवं चमकदार आँखोंका आकर्षण अपना उज्ज्वल भविष्य छिपाये नहीं रख सका।

तेरापन्थ संघमे शिष्यके लिए आचार्यके वात्सल्यका वही स्थान है, जो प्राणीके जीवनमे श्वास का। आपने कालुगणीका जो वात्सल्य प या, वह असाधारण था। आचार्यके प्रति शिष्य का आकर्षण हो, यह विशेप वात नहीं, किन्तु शिष्यके प्रति आचार्यका सहज आकर्षण होना विशेप बात है। उसमें भी कालुगणी जेंसे गंभीरचेता महापुरुपका हृदय पा लेना अधिक आश्चर्यकी वात है। जिन्हें अपनी श्रीवृद्धिमे वहिजगत्‌का प्रत्यक्ष सहयोग नहीं मिला, अपनी कार्यजा शक्ति, कठोर श्रम और दृढ निश्चयके द्वारा ही जो विकसित वने, वे कालुगणी अनायास ही ११ वपके नन्हे शिष्यको अपना हृदय सौप दे, इसे समझनेमे कठिनाई है किन्तु सौंपा, इसमे कोई शक नहीं।

जैन-साधुओंको आचार और विचार ये दोनों परम्पराए समान रूपसे मान्य रही है। विचारशून्य आचार और आचार-शून्य विचार पूर्णताकी ओर ले जानेवाले नहीं होते। दीक्षा होने के साथ-साथ आपका अध्ययनक्रम शुरू हो गया। उसकी देख-रेख कालुगणीने अपने हाथमे ही रखी। एक ओर जहा चरम सीमाका वात्सल्य भाव था, दूसरी ओर नियन्त्रण और अनुशा-सन भी कम नहीं था। साधु-संघका सामूहिक अनुशासन होता है, वह तो था ही। उसके अतिरिक्त व्यक्तिगत नियन्त्रण और अनुशासन जितना आप पर रहा, शायद ही उतना किसी दूसरे पर रहा हो। चाहे आप यों समझ लें—वह जितना आपने सहन किया, उतना शायद ही कोई दूसरा सहन कर सकता है।

अथवा कालुगणीने उसकी जितनी आवश्यकता आप पर समझी शायद किसी दूसरे पर उतनी न समझी हो। कुछ भी हो, आपकी उस तितिक्षाने अवश्य ही आपको आगे बढाया—बहुत आगे बढाया, हम न उलझें तो यह सही है।

वात्सल्य और अनुशासन इन दोनोंके समन्वयसे तितिक्षाके भाव पैदा होते है और उनसे जीवन विकासशील बनता है। कोरे वात्सल्यसे उच्छृङ्खलता और कोरे नियन्त्रसे प्रतिकारके भाव बनते हैं, यह एक सीधी-सादी बात है।

आप अपनी अनुशासन करनेकी आदत पर ही नहीं रहे, उसका पालन करनेकी भी आदत बना ली। यह उचित था। स्वयं अनुशासनको न पाले, उसे पलवानेकी भी आशा नहीं रखनी चाहिये।

आपकी दैनिक चर्या पर चम्पालालजी स्वामी निगरानी रखते थे। यह आवश्यक था या नहीं, इस पर हमे विचार नहीं करना है। उनमे अपने बन्धुके जीवन-विकासकी ममता थी, उत्तरदायित्वकी अनुभूति थी, यह देखना है। आप उनका बहुत सम्मान रखते। उनकी इच्छाका भी अतिक्रमण नहीं करते।

अध्ययनमे संलग्न रहना, गुरु-उपासना करना, स्मरण करना, कम बोलना, अपने स्थान पर बैठे रहना, अनावश्यक भ्रमण न करना, हास्य-कुतूहल न करना—ये आपकी प्रकृतिगत प्रवृत्तिया थी।

कालुगणीने आपको सामुदायिक कार्य-विभाग (जो सब

साधुओंको बारीसे करने होते है) से मुक्त रखा। उनके बहुमुखी अनुग्रहसे समूचे संघका ध्यान आपकी ओर खिंच गया। आप लोगोंके लिए कल्पनाओंके केन्द्र बन गये, बड़े-बड़े साधु भी आपके प्रभावकी स्थितिको स्वीकार करते थे।

अध्यापन

आपने दीक्षाके दो वर्ष बाद साधुओंको पढाना शुरू किया। आपको केवल प्रतिभानेही अध्यापक नहीं बनाया, दूसरोंको अपनानेकी वृत्तिने इसमे पूरा सहयोग किया। आप अपने मूल्यवान् समयका बहुलांश दूसरोंको देते, सिर्फ पढानेके लिए ही नहीं, कुछ बनानेके लिए भी। अपने विद्यार्थी-साधुओंकी सार-संभाल करना, कार्यकुशल बनाना, आचार-विचारकी निगाह रखना, रहन-सहन खान-पानका ध्यान रखना, उनके निजी कार्योंकी चिन्ता करना, अनुशासन बनाये रखना—ये सब आपकी अध्यापन-क्रियाके अङ्ग थे। आप कहीं बँधे या नहीं बँधे, पता नहीं, बाँधनेमे बडे दक्ष थे। मुनिश्री चम्पालालजी कई बार कहते—तू इतना समय दूसरोंके लिए लगाता है, अपनी

चेष्टा नहीं करता। तब आप कहते—दूसरे कौन ? यह अपना ही काम है। आपकी उदारतासे प्रभावित हो थोड़े वर्षोंमे आपके लगभग १६ स्थायी विद्यार्थी बन गये।

प्रसंगवश कुछ अपनी बात कहदूं। उन विद्यार्थियोंमे एक मैं भी था। यह हमारा निजी अनुभव है, हमपर जितना अनु-शासन आपकी भौंहोंका था, उतना आपकी वाणीका नहीं था। आप हमे कमसेकम उलाहना देते थे। आपकी संयत प्रवृत्तिया ही हमे संयत रखनेके लिए काफी थीं। आपमे शिक्षाके प्रति अनुराग पैदा करनेकी अपूर्व क्षमता थी। आप कभी-कभी हमे बडो मृदु बातें कहते —

“अगर तुम ठीकसे नहीं पढोगे तो तुम्हारा जीवन कैसे बनेगा, मुझे इसकी बडी चिन्ता है। तुम्हारा यह समय बातोंका नहीं है। अभी तुम ध्यानसे पढो, फिर आगे चल खूब बातें करना। यह थोड़े समयकी परतन्त्रता तुम्हें आजीवन स्वतन्त्र बना देगी। आज अगर तुम स्वतन्त्र रहना चाहोगे तो सही अथ में जीवन भर स्वतन्त्र नहीं बनोगे। मेरा कहनेका फर्ज है, फिर जसो तुम्हारी इच्छा······ । इसमे जबर्दस्तीका काम है नहीं, आदि आदि।”

विद्यार्थियोंमें उत्साह भरना आपके लिए सहज था। हमने नाममाला कण्ठस्थ करनी शुरू की। बडी मुश्किलसे दो श्लोक कण्ठस्थ करपाते। नीरस पदोंमे जी नहीं लगता। हमारा उत्साह बढ़ानेके लिए आप आधा-आधा घण्टा तक हमारे साथ उसके

श्लोक रटते, उनका अर्थ बताते। थोड़े दिनों बाद हम एक-एक दिनमें छत्तीस-छत्तीस श्लोक कण्ठस्थ करने लग गये। और क्या, बात-बातमें आप स्वयं कठिनाइयां सह हमारी सुविधाओंका खयाल करते।

कारलाइलने लिखा है —

"किसी महापुरुषकी महानताका पता लगाना हो तो यह देखना चाहिए कि वह अपनेसे छोटोंके साथ कैसा बर्ताव करता है।"

आपका मुनि-जीवन निःसन्देह एक असाधारण महानता लिये हुए था।

स्व-शिक्षा

आपने मुनि-जीवनके ११ वर्षोंमें लगभग २० हजार श्लोक कण्ठस्थ कर पौराणिक कण्ठस्थ परम्परामें नई चेतना ला दी। वह एक युग था जबकि जैनके आचार्य और साधु-सन्त विशाल ज्ञान-राशिको कण्ठात् कण्ठ सञ्चारित करते थे। किन्तु इस बदले वातावरणमें २० हजार श्लोक याद करना आश्चर्यपूर्ण बात है। आपके कण्ठस्थ ग्रन्थोंमें मुख्य ग्रन्थ व्याकरण, साहित्य, दर्शन और आगमविषयक थे। आपने मातृ-भाषाके अतिरिक्त संस्कृत-प्राकृतका अधिकारपूर्ण अध्ययन किया।

आपकी शिक्षाके प्रवर्तक स्वयं आचार्य श्री कालुगणी रहे। उनके अतिरिक्त आयुर्वेदाचार्य आशुकविरत्न पं० रघुनन्दनजीका भी सुन्दर सहयोग रहा। इनके जीवनका बहुल भाग पूर्वाचार्य

श्री कालुगणी तथा आचार्यश्री के निकट-सम्पर्कमे वीता है। ये मुनिश्री चौथमलजी द्वारा रचित भिक्षुशब्दानुशासन की वृहद् वृत्तिके लेखक हैं। 'प्राकृत-काश्मीर' इनकी छोटी किन्तु सुन्दरतम रचना है। ये प्रकृतिके साधु हैं। इन्होने निरवद्य विद्यादानके रूपमे तेरापन्थ गणको अमूल्य सेवायें की है और कर रहे हैं।

सोलह वर्षकी अवस्थामे आप कवि वने। पट्टोत्सव, मर्यादोत्सव आदि विशेष अवसरों पर आपकी कविता लोग वडे चावसे सुनते। आपने १८ वर्षकी उम्रमे 'कल्याण-मन्दिर' की समस्या-पूर्तिके रूपमे 'कालु-कल्याण-मन्दिर' नामक एक स्तोत्र रचा। आपका स्वर वडा मधुर था। आप उपदेश देते, व्याख्यान करते, गाते, तब लोग मुग्ध वनजाते। वहुधा ऐसा भी होता कि आप गीतिका गाते और कालुगणि उसकी व्याख्या करते। आप कई वार कहा करते हैं कि "मैं ज्यो-ज्यो अवस्थामे वडा होता गया, त्यों-त्यों मोटे स्वरमें गाने और वोलनेकी चेष्टा करने लग गया। कारणकि ऐसा किये विना प्राय अवस्था-परिवर्तनके साथ-साथ (१६ वर्षके वाद) एकाएक कण्ठ वेसुरे वन जाते हैं।"

आप सदा कालुगणीके साथमे रहे। सिर्फ एक वार शारीरिक अस्वास्थ्यके कारण कुछ महीनोंके लिए आपको अलग रहना पडा। गुरु-सेवाकी सतत प्रवृत्तिके कारण आपको वह वहुत असह्य लगा। कालुगणी स्वय आपको अलग रखना नहीं चाहते

थे। मर्यादोत्सवके दिनोंमे साधु-साध्वी-वर्गकी सारणा-वारणाके समय आचार्यवर सिर्फ आपकी ही सेवाए लेते थे। शिक्षाके क्षेत्रमे भी आपकी प्रवृत्तियोंसे आचार्यवर पूर्ण प्रसन्न थे। आखिरी वर्षोंमे वे इस चिन्तासे सर्वथा मुक्त रहे।

दिनचर्या

प्रात चार बजे जागना और रातको दश बजे सोना, इसके बीच साधु-चर्याका पालन करना, अतिरिक्त समयमे अध्ययन, स्वाध्याय, स्मरण आदि करना, संक्षेपमे आपकी यह दिनचर्या रहती। आप घण्टों तक खडे-खडे स्वाध्याय करते। आपने कई बार रातके पहले पहरमे तीन-तीन हजार श्लोकोका स्मरण—पुनरावर्तन किया। आप समयको बिल्कुल निकम्मा नहीं गमाते। मार्गमे चलते-चलते कहीं दो मिनट भी रुकना होता, वहीं स्मरण करने लग जाते। यह अध्यवसाय आपके लिए साधारण था। 'एक क्षण भी प्रमाद मत कर' भगवान् महावीरके इस वाक्यको आपने अपना जीवन-सूत्र बना रखा था।

मधुर संवाद

सूर्य अस्त हो गया था। एक आवाज आई। सब साधु इकट्ठे होगये। गुरुको वन्दना की। प्रतिक्रमण—दैनिक आत्मालोचन शुरू हुआ। मुहूर्त्त भर वही चला। फिर साधु उठे। गुरुके समीप आये। नम्र हो गुरुवन्दना की। अपने अपने स्थान चले गये। थोडी देर बाद कालुगणीने आपको आमन्त्रण दिया। आप आगे आये। आचार्यवरने एक सोरठा कहा—

"सीखो विद्यासार, *परहो कर प्रमाद नँ।
बधसी बहु विस्तार, धार सीख धीरज मनँ॥"

और कहा कि यह सोरठा सबको सीखा देना। आपने

---

* दूर।

आचार्यवरकी आज्ञा शिरोधार्य की। रातका आदेश (पहर रात आनेके बाद सोनेकी जो आज्ञा होती है) हुआ। साधु सो गये। चार बजे फिर जागरण हुआ। सूर्योदयमे एक मुहूर्त्त बाकी रहा। एक आवाज आई। सब साधु फिर आचार्यवरको प्रातःकालिक वन्दना करने एकत्रित हो गए। वन्दना हुई। रात्रिक आत्मालोचन हुआ। सूर्य उगते-उगते साधु अपने दैनिक कार्यक्रममे लग गये। आपने आचार्यवरके आदेशानुसार वह सोरठा साधुओंको कण्ठस्थ करा दिया।

समयकी गति अबाध है। दिन पूरा हुआ, रात आई। जो कल हुआ, वह आज भी हुआ। आप आचार्यवरको वन्दना कर मन्त्री मुनि मगनलालजी स्वामीको वन्दना करने गये। उन्होंने आपसे कहा—आचार्यवरने जो तुझे सोरठा फरमाया, उसके उत्तरमें तूने कुछ किया क्या ? आपने सकुचाते हुए कहा—नहीं। मन्त्री मुनिका संकेत पा आपने एक सोरठा रच आचार्यवरको निवेदन किया —

"महर रखो महाराय, लख चाकर पदकमलनो।
सीख अपो सुखदाय, जिम जलदी शिव गति लहू ॥"

यह काव्यमय गुरु-शिष्य-सम्वाद भावी गति-विधिका संकेत था। अगर आप साधु-संघकी दृष्टिमे होनहार न होते तो यह सम्वाद अवश्य एक नई धारणा पैदा करता। वैसी स्थिति पहले बनी हुई थी। इसलिए यह उसका पोषकमात्र बना।

विकासको दिशामें

कालुगणीके अन्तिम तीन वर्ष जीवनके यशस्वी वर्षोंमेंसे थे। उनमें आचार्यवरने क्रमशः मारवाड़, मेवाड़ और मध्यभारतकी यात्रा की। उससे आपको भी अनुभव बढ़ानेका अच्छा मौका मिला। इससे पूर्व आपकी दीक्षाके बाद आचार्यवर सिर्फ बीकानेर स्टेटमें ही रहे। वहाँ भी आप जन-सम्पर्कमें बहुत कम आये। केवल अध्ययन-अध्यापनमें रहे। यात्राकालमें आपने कुछ समय जन-सम्पर्कमें लगाना शुरू किया। रातके समय बहुलतया व्याख्यान भी आप देने लगे। ये तीन वर्ष आपके लिए व्यावहारिक शिक्षाके थे। कालुगणीने आपको कुछ बनाने का निश्चय किया। उसके पीछे बड़े बलवान् यत्न रहे। आपके

विकासके प्रति आचार्यवरकी सजगताकी एक छोटी सी किन्तु बहु मूल्यवान् घटना मैं पाठकोंके समक्ष रखूंगा।

जैन-मुनि पाद-विहार करते हैं, यह बतानेकी जरूरत नहीं। आचार्यवर मध्यभारतकी यात्रामे थे, तबकी बात है। आप विहारके समय आचार्यवरके साथ साथ चलते। वृद्ध-अवस्था के कारण आचार्यवर धीमी गतिसे चलते। समय अधिक लगता, इसलिए आचार्यवरने एक दिन कहा—"तुलसी! तू आगे चला जाया कर, वहा जा सीखा कर।" आपने साथ रहनेका नम्र अनुरोध किया, फिर भी आचार्यवरने वह माना नहीं। इसे हम साधारण घटना नहीं कह सकते। आपके २०-२५ मिनट या आध घण्टेका उनकी दृष्टिमें कितना मूल्य था, इसका अनुमान लगाइये।

आपने कालुगणीको जितनी त्वरासे अपनी ओर आकृष्ट किया, उसका सूक्ष्म विश्लेपण करना दूसरे व्यक्तिके लिए सम्भव नहीं है। वे स्वय इसकी चर्चा करते तो कुछ पता चलता। खेद है कि वैसी सामग्री उपलब्ध नहीं हो रही है। ऐसा सुना जाता है कि आपके प्रति कालुगणीकी जो कृपा दृष्टि थी, वह संस्कार-जन्य थी। यह ठीक है, फिर भी कारण खोजनेवालेको इतने मात्रसे सन्तोप नहीं होता। वह कार्य-कारणके तथ्योंको ढूंढ निकाले विना विश्राम नहीं ले सकता।

तेरापथके एकाधिनायक आचार्यमे अनुशासनकी क्षमता होना सबसे पहली विशेपता है। एक शृङ्खला, समान आचार-

विचार और व्यवहारमे चलनेकी नीति बरतनेवाले संघमें योग्यताके साथ अनुशासन बनाये रखना बड़ी दक्षताका काम है। सैकड़ों साधु-साध्वियो और लाखों श्रावक-श्राविकाओंका एकाधिकार पूर्ण सफल नेतृत्व करना एक उल्लेखनीय बात है। हमे आचार्यश्री भिक्षुकी सूझ पर, उनके कर्तृत्व पर सात्त्विक अभिमान है। उनके हाथोंसे बना हुआ संगठन एकताका प्रतीक है, बेजोड़ है। जहा संघ होता है, वहा शासन भी होता है। शासनका अर्थ है—सारणा और वारणा, प्रोत्साहन और निषेध उलाहना और प्रशंसा। इन दोनों प्रकारकी स्थितियोंमे उनकी मनोभावनाओंको समानस्तरीय रखना, यही संघपतिके कार्यकी सफलता है।

दूसरी विशेषता है आचार-कौशल। विचारकी अपेक्षा आचार का अधिक महत्त्व है। आचारहीन व्यक्तिके विचार अधिक मूल्य नहीं रखते। श्रीमद् जयाचार्यने लिखा है कि एक नौलीमे सौ रुपये होते हैं, उनमे ९९ रुपयोंके बराबर आचार है और ज्ञान एक रुपयेके समान है। हमारी परम्परामे आचारकुशलका कितना महत्त्व है, यह निम्नलिखित एक धारणासे स्पष्ट हो जाता है।

मानो, एक आचार्यके सामने दो शिष्य हैं—एक अधिक आचारवान् और दूसरा अधिक पण्डित। आचार्यको अपना पद किसे सौंपना चाहिए? हमारी परम्परा बताती है, पहलेको—आचार कुशल को। आचार्य शब्दकी उत्पत्ति भी आचार-कुशलता से हुई है—"आचारे साधुः आचार्यः"।

क्या मैं नहीं भूलरहा हू ? क्या आचार-कौशलको दूसरा स्थान देकर मैंने कोई गलती नहीं की है ? नहीं। अनुशासनको पहला स्थान इसकी पुष्टिके लिए ही दिया गया है। एक साधुको आचार-कुशल होना चाहिए, यह पर्याप्त हो सकता है किन्तु आचार्यके लिए यह पर्याप्त नहीं होता। उनके साथ एक सूत्र और जुडता है, जैसे—स्वय आचार कुशल रहना और दूसरे साधु-साध्विया आचार कुशल रहें, वैसी स्थिति वनाये रखना। उस स्थितिका नाम है अनुशासन। इसलिए आचार्यके प्रसंगमे आचार-कौशलसे पहले अनुशासनको स्थान मिले, यह कोई अनहोनी वात नहीं है। अनुशासनकी योग्यना रखनेवाला आचार-कौशल ही एक मुनिको आचार्य-पद तक पहुचा सकता है।

तीसरी विशेपता संघ-हितैपिता और चौथी है विद्या।

कालुगणीने आपको पहली वार देखा, तव आपके प्रति उनका एक सहज आकर्पण वना, उसे हम संस्कार मान सकते है। किन्तु वादमे उनकी आपको उत्तराधिकारी वनानेकी धारणा पुष्ट होती गई, वह आपकी योग्यताका ही परिणाम है। आपके मुनि-जीवनमे उक्त चारो विशेपताएं किस रूपमे विकसित हुई, इससे पाठक अपरिचित नहीं रह रहे हैं।

आचार्य-जीवन

संघका नेतृत्व

९३ की भाद्र शुक्ला नवमीका सूर्योदय हुआ। गंगापुरकी सँकरी गलियोंमेंसे आ आ हजारों आदमी एक विशाल चौकमे जमा हो रहे थे। सबके चेहरेपर खुशी झलक रही थी। उनके मनोभाव खिन्नताके बाद प्रसन्नताका आलिङ्गन करते जैसे लगरहे थे। देखते-देखते चौक खचाखच भर गया। सबकी आंखें प्रतीक्षामें अधीर हो रही थीं। दो-चार साधु आये। चौकके दायें ओरकी चोकी पर एक बडा पाट बिछाया। उस पर श्वेत वस्त्रसे बने आसनकी आभा निराली थी। मृदु-गंभीर जयघोषने प्रतीक्षाका बन्धन तोडा। मंझला कद, गौर वर्ण, सुन्दर आकार, पतला शरीर, गहरे बाल, विशाल भौंहें, कपोलको स्पर्श करती लम्बी और चमकदार आंखें, गम्भीर मुद्रा, सफेद वस्त्र धारण किये

श्री तुलसी आचार्य-पदका अभिषेक पाने आ रहे है। साधुओं की मण्डली साथ है। जनताने जाना। बडी तत्परताके साथ सब साथके साथ उठे। अपने उदीयमान धर्म-अधिनायकका अभिनन्दन किया।

आप पाट पर विराज गये। आपके एक ओर साधु, दूसरे ओर साध्वियाँ बैठ गईं। सामने अपार जन-समुदाय था।

परम श्रद्धेय श्री कालुगणीके स्वर्गवासके बाद यह पहला समारोह था।

सबसे पहले मङ्गलाचरणमें नमस्कार-महामन्त्रका पाठ हुआ। उसके बाद मंत्री मुनि मगनलालजी स्वामीने आपको नई पछेवड़ी धारण कराई। यह था आपका पट्टाभिषेक। समूचे संघने संघ-गान 'जय जय नन्दा' गा आपका अभिनन्दन किया। विद्वान् साधु-साध्वी तथा श्रावकवर्गने कविताएँ पढ़ीं। आपने एक संक्षिप्त प्रवचन किया। कालुगणीकी अविस्मृत स्मृति कराते हुए उनके महान् व्यक्तित्व पर कुछ बातें कहीं। उत्सवके उपलक्ष्यमे साधु-साध्वियोंको गाथाएँ[1] बख्शीश कीं। समारोह सम्पन्न हो गया।

वह दिन लाखों व्यक्तियोके लिए अचरजका दिन था। उन्होने देखा—तेरापन्थके एकतन्त्रीय धर्म-शासनका भार एक २२ वर्षीय युवकने सम्हाला है। किसने जाना कि इसकी रश्मियों मे विश्वको आलोकित करनेकी शक्ति है, यह कोई सन्देश लेकर

---

१ लिपि-विकास तथा पारस्परिक कार्य व्यवहारकी व्यवस्थाकी एक साधन-प्रणाली।

आया है। आगे कुछ भी हो, वह दिन कल्पनाओका दिन था। या यो कहू कि उस दिन कालुगणीके मनुष्यके पारखी होनेकी वात कसौटी पर आई थी। जैन-इतिहासमे इतनी कम उम्रमे आचार्य-पद पानेके आचार्य हेमचन्द्र आदिके एक दो उदाहरण मिलते है। इसलिए लोगोंके आश्चर्यको अतिरंजित नहीं कहा जा सकता।

आपने जव शासनका कार्य-भार सम्हाला, उस समय भिक्षु-सघमे १३९ साधु और ३३३ साध्वियां थीं। उनमे ७६ साधु आपसे दीक्षा-पर्यायमे वडे थे। लाखो श्रावक थे।

आपका व्यक्तित्व समझिये, संघका सौभाग्य समझिये, कालुगणीका प्रभाव या सघ-मर्यादाका महत्त्व समझिये, कुछ भी समझिये, आपके नेतृत्वका समूचे सघने जिस हर्पके साथ अभिनन्दन किया, वह जड लेखनीका विपय नहीं वन सकता।

नवमीके मध्याह्नमे आपने साधु-साध्वियोको आमन्त्रित कर अपनी नीतिके वारेमे एक वक्तव्य दिया। वह यों है —

"श्रद्धेय आचार्यप्रवर श्री कालुगणीका स्वर्गवास हो गया, इसमे मैं स्वय खिन्न हू, साधु-साध्वियां भी खिन्न हैं। मृत्यु एक अवश्यंभावी घटना है। इसे किसी प्रकार टाला नहीं जा सकता। खिन्न होनेसे क्या वने। इसलिए सभी साधु-साध्वियोंसे मेरा यह कहना है कि सव इस वातको विस्मृतसी वना दें। इसके सिवाय चित्तको स्थिर करनेका दूसरा कोई उपाय नहीं है।

अपना शासन नीतिप्रधान शासन है। इसके सभी साधु-

साध्वियाँ नीतिवान् हैं। रीति-मर्यादाके अनुसार चलनेपर सदा आनन्द है। किसीको कोई विचार करनेकी जरूरत नहीं। श्रद्धेय गुरुदेवने मुझे शासनका कार्य-भार सौंपा है। मेरे नन्हें कन्धों पर उन्होंने अगाध विश्वास किया, इसके लिए मैं उनका अत्यन्त कृतज्ञ हूं। मेरे साधु-साध्वियाँ बड़े विनीत, अनुशासित और इङ्गितको समझनेवाले हैं। इसलिए मुझे इस गुरुतर भारको वहन करनेमे तनिक भी संकोच नहीं हुआ और न हो रहा है।

मैं पुनः वही बात याद दिलाता हू कि सब साधु-साध्वियाँ अपने शासनकी नियमावलीका हृदयसे पालन करें। मैं पूर्वाचार्य श्री की तरह सबकी अधिकसे अधिक सहायता करता रहूगा, ऐसा मेरा दृढ संकल्प है। जो मर्यादाकी उपेक्षा करेंगे, उन्हें मैं सहन नहीं करूंगा। इसलिए मैं सबको सावधान किये देता हू।

सब भिक्षु-शासनमे फले-फूले रहे। यह सबका शासन है। सब सयम पर दृढ रहे। इसीमे सबका कल्याण है, शासनकी उन्नति है। मैं आशा करता हू, यह मेरा पहला वक्तव्य साधु-साध्वियोके अन्त करणमे रमता रहेगा।"

इसका साधु-संघ पर जादूका सा असर हुआ। अवस्था और योग्यतामे गठबन्धन नहीं है इसकी सचाईमे कोई सन्देह नहीं रहा।

आपके पट्टासीन होनेपर साधु-समाजको कोई विशेष आश्चर्य नहीं हुआ। कारणकि उसके लिए यह अज्ञात विषय नहीं था जो भावना मनतक थी, वह बाहर आगई, वस सिर्फ इतना-सा हुआ।

भाद्र कृष्णा अमावस्याकी बात है, श्रीकालुगणीने आपको एकान्तमे आमन्त्रित किया। आप उस वार करीव १।। घण्टा तक गुरुदेवकी सेवामे रहे। गुरुदेवने शासनसम्बन्धी रहस्य कुछ लिखाये, कुछ मौखिक वताये। अपने उत्तराधिकारीके रूपमे उनका आपसे मन्त्रणा करनेका यह पहला अवसर था। कालुगणी ऐसा करना नहीं चाहते थे। उनकी हार्दिक इच्छा कुछ और थी। वे अपनी तपोमूर्त्ति संसारपक्षीय माता श्री छोगाजीके समक्ष वीदासरमे आपको युवाचार्य-पद देना चाहते थे। किन्तु ऐसा हो नहीं सका। उनके जीवनका यही एक ऐसा मनोभाव है, जो अधूरा रहा।

मध्यभारतकी सफल यात्रासे लौटते समय चित्तौड़मे उनके बाएँ हाथकी तर्जनीमे एक छोटा-सा व्रण निकला। वह धीमे-धीमे चलते-चलते भीषण वनगया। वहुत उपचार हुए। फल नहीं निकला। अखिर उन्हें अपनी अन्तिम स्थितिका निश्चय हो गया। तव उन्हें अपनी पुरानी धारणा वदलनी पडी। उसीका परिणाम अमावस्याके दिन सवके सामने आया।

भादवाके सुदी २ के दिनतक गुरुदेवकी प्रौढ कलनाओसे आप लाभान्वित होते रहे। साधु-साध्वियोंको शिक्षाके अवसर पर गुरुदेवके द्वारा साधारण सकेत मिलते रहे। जैसे—"समय पर आचार्य अवस्थामे छोटे हों, वड़े हों, फिर भी सवको समान रूप से प्रसन्न रहना चाहिए। गुरु जो कुछ करते हैं, वह शासनके हितोंको ध्यानमें रखकर ही करते हैं।"

इसके सिवाय स्पष्टरूपमें उन्होंने कभी कुछ नहीं कहा।

सूर्यकी किरणें उल्लास लिये आईं। तीजका पुण्य प्रभात हुआ। आकाश और भूमि दोनों रूपवान् बनगये। जो छिपनेवाला नहीं, वह छिप नहीं सकता। वह चमकेगा, अपनेआप उसका रूप निखरेगा। उसके प्रति दूसरे उदार हों, इसमें शोभा है। इससे ऋण-उऋणताके भाव बनते है, उपकार्य-उपकारक का सम्बन्ध जुडता है, द्वैतसे अद्वैत बनता है, श्रद्धा और पूजाकी भूमि तैयार होती है।

कालुगणीकी कृपाका दूसरा प्रवाह नया रूप लिए बहने चला है। लोगोंकी कल्पनाएँ मूर्त्त बनरही हैं। आचार्यवरने सब साधु-साध्वियों तथा श्रावकोंकी उपस्थितिमें युवाचार्य-पदका पत्र लिखा। शरीर अस्वस्थ था। हाथमे अतुल वेदना थी। फिर भी कर्तव्य निभानेकी असीम भावना थी। इस घड़ीसे पहले उन्हें शासन-प्रवन्धकी चिन्ता मुक्ति नहीं दे रही थी। वे अपने उत्तर-दायित्वमें कोई खामी देखना नहीं चाहते थे। गुरुदेवने आपको युवाचार्य-पदका उत्तरीय धारण कराया। अपना लिखा पत्र पढ़ा :—

"गुरुभ्यो नम

भिक्षु पाट भारीमाल

भारीमाल पाट रायचन्द

रायचन्द पाट जीतमल

जीतमल पाट मघराज

मघराज पाट माणकलाल
माणकलाल पाट डालचन्द
डालचन्द पाट कालुराम
कालुराम पाट तुलसीराम

विनयवत आज्ञा-मर्यादा प्रमाणे
चालसी सुखी होसी (सम्वत्
–१९९३ भादवा प्रथम सुदी ३ गुरुवार)"

समूचे संघमे हर्षकी लहर दौड गई। योग्यतम धर्मनेताको पा सबको गौरव अनुभव हुआ। समूचा संघ चिन्ताविमुक्त हो गया।

तेरापन्थमे भावी व्यवस्थाका भार एकमात्र आचार्य पर होता है। इसमे दूसरे किसीकी पंचायत नहीं होती। आचार्य जिसे योग्य समझें, उसे अपना उत्तराधिकारी चुन लेते है। वही समूचे संघको विना किसी 'ननु' 'नच' के मान्य होता है। न इसमे किसीके मतकी अपेक्षा होती है, न सलाह की।

आचार्य इसे अपना सबसे महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्व मानते हैं। फिर भी कालुगणीके अस्वास्थ्यको देखते हुए भावी व्यवस्थाका न होना संघके लिए चिन्ताका कारण था। एकाधिनायकतामे पूर्वाचार्यके द्वारा भावी आचार्य न चुना जाये तो संघका भविष्य समस्यामय बन जाता है। किन्तु महामनीषी गुरुदेव किसीको चिन्तातुर बनानेवाले नहीं थे। उन्होंने अपना उत्तरदायित्व

पूरा किया। इससे समूचे संघको आनन्द हुआ। स्वयं उन्होंने अनुभव किया।

आचार्यश्री के सामने अपने उत्तराधिकारीकी स्थिति बड़ी सुखद घटना थी। कई वर्षों तक ऐसी स्थिति रहती तो वह एक स्वर्ण-सुगन्धका संयोग बनता। मनुष्यका स्वभाव कल्पना करने का है। आखिर तो जो होना हो, वही होता है।

कल्पनाकी मीठी घड़ियोंको अधिक अवकाश नहीं मिला। छठके शामको हम सबके देखते-देखते परम श्रद्धेय गुरुदेव हम सबसे दूर हो गये। अब हमारे पास उनकी दैहिक सम्बन्धोंकी स्मृतिके सिवाय और कुछ नहीं रहा। संघपतिके प्रति अटूट असीम भक्तिके कारण वह दिन समूचे संघके लिए असह्य था। उस समय आचार्यश्री तुलसीने अन्तर-वेदनाके उपरान्त भी संघको बडी सान्त्वना दी। आपका धैर्य्य, साहस दूसरोंके लिए सिर्फ आश्चर्यमे डालनेवाला ही नहीं, किन्तु उन्हें साहसी बनानेवाला भी था उसी दिन आपने शासनका पूर्ण उत्तरदायित्व संभाला। नवमीके दिन बड़े समारोहके साथ आपका पट्टोत्सव मनाया गया। अब भी प्रतिवर्ष उसी दिन बड़े समारोहके साथ वह मनाया जाता है।

पहला कदम

कालुगणिने साधु-सघको शिक्षा-सम्पन्न वनानेके लिए जो चिरकालीन साधना की, उसके अनेक परिणाम सामने आये। अपने शिष्यको स्वय तैयार कर अपना उत्तराधिकारी वनाना यह सवसे वडा परिणाम था। तेरापन्थके इतिहासमे यह पहला अवसर था। दूसरे भी अनेक शिष्य वडे विद्वान् वने, उन्होंने सुदूर क्षेत्रोंमे जाकर धर्मकी वडी प्रभावना की। फिर भी कालुगणि अपनी साधनाको चरम सीमा पर पहुची हुई नहीं मानते थे। साध्वीवर्गकी शिक्षाका प्रश्न अभी हल नहीं हो पाया था। उसके वहुमुखी विकासकी योजनाएं कार्यकालमें नहीं आ सकी थीं। कालुगणीने आपको जो भावी कार्यक्रम वताया, साध्वी-शिक्षा उसका एक प्रमुख अग था। आपने पहला कदम यही चुना।

कालुगणीका स्वर्गवास हुए पूरे पन्द्रह दिन नहीं हुए थे, आपने साध्वियोंको संस्कृत-व्याकरण—कालुकौमुदीका अध्ययन शुरू करवाया। वह आपके जीवनका अभिन्न कार्यक्रम वन गया। आज भी उसी रूपमे चालू है। साध्वी-शिक्षाके लिए आपने जो सफल प्रयास किया, वह आपके यशस्वी जीवनका एक समुज्ज्वल पृष्ठ होगा।

इस विशेष शिक्षामे शुरू-शुरूमे १२ साध्विया आई थीं। आज उनकी संख्या लगभग १५० है। साध्वी-शिक्षाके वारेमे अपने उद्गार व्यक्त करते हुए आप कई वार कहते हैं:—

"शिक्षाके क्षेत्रमें हमारी साध्विया किसीसे पीछे नहीं हैं। इनके पवित्र आचार-विचार, विद्यानुराग और निष्ठा प्रत्येक नारी के लिए अनुकरणीय है।"

शिक्षा-प्रवृत्तियां

आचार-कौशलको सुसंस्कृत रखनेके लिए विचारोकी भित्ति विवेचनापूर्ण होनी चाहिए। बहुमुखी शिक्षाके विना यह सम्भव नहीं। इसलिए आपने उस पर अपना ध्यान केन्द्रित किया। आपकी शिक्षा सम्बन्धी प्रवृत्तियोकी जानकारी भी कम महत्त्व पूर्ण नहीं है।

विद्या विकासकी प्रवृत्तिका पहला अंग है तीन पाठ्यक्रमोंका निर्माण। वह यों है —

(१) आध्यात्मिक शिक्षाक्रम

(२) सिद्धान्त-शिक्षाक्रम

(३) जैनधर्म-शिक्षाक्रम

पहली प्रवृत्तिमे व्याकरण (हिन्दी, संस्कृत और प्राकृत), साहित्य, सिद्धान्त, दर्शन, कोश, इतिहास, ज्योतिष, अन्य

(वैकल्पिक) भाषा और कला इन ६ विषयोंका शिक्षण होता है। इसके शिक्षाकालकी अवधि नौ वर्षकी है। इसकी योग्य, योग्यतर और योग्यतम, ये तीन परीक्षाएँ निश्चित हैं। साधु-संघमे इसका सफल प्रयोग हो रहा है।

'जैनधर्म शिक्षा' द्वारा श्रावक - समाज तत्त्वज्ञानी, सर्वधर्म-समन्वयी और विशालदृष्टि होगा, इसमे कोई सन्देह नहीं। अन-पढ़ स्त्रियाँ भी आपकी प्रेरणाके सहारे जैन-सिद्धान्तोकी मार्मिकता तक पहुंचनेमे सफल हुई है।

स्त्रीशिक्षाके बारेमें आप अन्तर-द्वन्द्वसे मुक्त है। इस विषय पर आपने कहा है—

"शिक्षा विकासका साधन है। उससे बुराई बढ़ती है, मैं यह माननेको तैयार नहीं हू। शिक्षाके लिए स्त्री-पुरुषका भेद-भाव नहीं किया जा सकता। बुराईके कारणोंको ढूढना चाहिए। उनके बदले शिक्षाको बदनाम करना एक बुरी मनोवृत्ति है।"

तीसरी शिक्षा-पद्धति प्रयुक्त नहीं हुई है। प्रयोगकी परिधिके आसपास है। सिद्धान्तके अतिरिक्त दूसरे विषयोंमें गति नहीं पाने-वालोंके लिए यह पद्धति अत्यन्त लाभकारक होगी, ऐसा सम्भव है।

इनके अतिरिक्त मासिक निबन्ध-लेखन, संस्कृत-भाषण-सम्मे-लन, समस्या-पूर्ति-सम्मेलन, कवि-सम्मेलन, साप्ताहिक संस्कृत-भाषण-प्रतिज्ञा, वाद-प्रतियोगिता, सिद्धान्त-चर्चा-आयोजन, सहस्वाध्याय आदि अनेकविध प्रवृत्तिया आपकी विद्याविकास-योजनाके अंग बनीं।

आगमनिष्ठ, सुसगठित और सुमर्यादित तेरापन्थ संघको बहु-मुखी विद्या-सम्पन्न करनेका श्रेय आपकी सूक्ष्म दृष्टिको मिलेगा। तेरापन्थ संघ आपका कितना ऋणी है, यह भविष्य बतायेगा।

बिडला-कालेज, पिलानीके धर्म-संस्कृति एव संस्कृत-साहित्यके प्राध्यापक ए० एस० वी० पंत एम० ए० बी० टी० ने एक लेखमे बताया है—

[1]"ये साधु शुद्ध एव धार्मिक अध्ययन करनमें अत्यधिक लगे रहते है। मैंने उनमेंसे कई एक साधुओके साथ साहित्यिक एव दार्शनिक चर्चा की, अनुभव किया कि उनमें अच्छी जानकारी है। उनमेंसे कई एक साधु तो उच्च श्रेणीके कवि है। नव दीक्षितोको शिक्षा देनका उनका ढग स्तुत्य है। वह अध्ययन, बोध आचरण एव प्रचारणपर समानरूपेण जोर देते है।"

---

1 These Sadhus are very much devoted to the pursuit of a studies secular and sacred I had literary and philosophical discussions with some of them I found them quite well informed Some of them are poets of a very high order Their system of imparting education to the newly initiated is praiseworthy It lays equal emphasis on the four aspects of the persuit of knowledge, i e, १ अध्ययन study, २ बोध assimilation, ३ आचरण application, ४ प्रचरण dissemination

(विवरण-पत्रिका, २६ जुलाई, १९५१)

वर्ष १ सख्या ३ पृष्ठ २ ३

कुशल वक्ता

मानव-समाजको लक्ष्यकी ओर आकृष्ट करनेके दो प्रमुख साधन है—लेखन और वाणी। लेखनीमे जहा भावोंको स्थायी बनानेका सामर्थ्य है, वहा वाणीमें तात्कालिक चमत्कार—जादूका सा असर होता है। आपने अपनी ओजस्वी वाणी द्वारा युवक-हृदयमे जो धर्मका पौधा सींचा है, वह धार्मिक जगत्के उज्ज्वल भविष्यका मंगल-संकेत है।

आजके भौतिकवादी युग और आत्महीन शिक्षा-पद्धतिमें पले हुए अर्ध-शिक्षित युवकोंकी धर्मके प्रति अश्रद्धा होना एक सहज स्थिति बन गई, वैसे वातावरणमे आपकी मर्मस्पर्शी विवेचना और तर्कसंगत उत्तरोंने युवकोकी दिशा बदलनेमें जो सफल प्रयास किया है, वह सबके लिए उपादेय है।

आपका मृदु-मन्द्र स्वर, गम्भीर घोष, सुदूर तक पहुचनेवाली आवाज श्रोताको आश्चर्यचकित किये विना नहीं रहती। ध्वनि-विस्तारकका सहारा लिये विना ही आप व्याख्यान करते हैं। फिर भी दश-पन्द्रह हजार व्यक्ति तो वडी सुविधाके साथ उसे सुन सकते है। यह शक्ति वहुत विरले व्यक्तियोको ही सुलभ होती है। राजस्थानमे आपके व्याख्यानकी भापा राजस्थानी होती है। हिन्दी भापी प्रान्तोंमे आप हिन्दी वोलते है। गुजराती लोगोमे गुजराती और आवश्यकता होने पर कभी कभी संस्कृतमे भी व्याख्यान होता है। आप देश-कालकी मर्यादाओको अच्छी तरह समभते है। आपके सार्वजनिक वक्तव्योंके अवसर पर हजारो लोग वडी उत्सुकतासे आते हैं।

आपको वाणीसम्बन्धी जो प्राकृतिक विशेपतायें प्राप्त हैं, उनसे मानसिक विशेपताएं कम प्राप्त नहीं है। आपको हर समय यह खयाल रहता है—"मेरे व्याख्यानसे लोगोंको कुछ मिले, वे कुछ सीख सकें। मेरे व्याख्यान अगर लोक-रंजनके लिए हुए तो उससे क्या लाभ।"

जनताकी भापामें जनताकी वातें कहना आपकी वडी विशेपता है। आपके व्याख्यानोमे अधिकतया जनताके जीवन-उत्थानकी प्रेरणा रहती है। आपके उपदेश सुन हजारों व्यक्तियो ने दुर्व्यसन छोडे हैं—तम्वाकू, मद्य, मास, शिकार दुराचार आदि से दूर हुए है। सैकडों ऐसे आदमी देखे जो किसी भी शर्त पर तम्वाकू छोडनेको तैयार न थे। उन्होंने आपका उपदेश सुनते-

सुनते बीडीके बण्डल फेंक दिए, चिलमे फोड़ दीं, आजीवन उससे मुक्त हो गए। कानूनकी अवहेलना कर मद्य पीनेवालोंने मद्य छोड़ दिया। और क्या, चोरबाजारी जैसी मीठी छुरी खानेवाले भी आपकी वाणीसे हिल गये। बाणसे न हिलनेवालोंको भी वाणी हिला देती है. इसकी सच्चाईमे किसे सन्देह है।

इस नवयुगकी सन्धि-वेलामे नवीनता-प्राचीनताका जो संघर्ष चल रहा है, उसे सम्हालने तथा बुड्ढो और युवकोंको एक ही पथ पर प्रवाहित करनेमे आपकी वाक्-शक्तिके सहज दर्शन मिलते है।

आप व्याख्यान देते-देते श्रोताओकी मनोदशाका अध्ययन करते रहते है। आचाराग सूत्रमे बताया है कि व्याख्याताको परिपद्की स्थिति देखकर ही व्याख्यान करना चाहिए। अन्यथा लाभके बदले अलाभ होनेकी सम्भावन रहती है। श्रोताकी तात्कालिक जिज्ञासाका स्वयं समाधान होता रहे, यह वक्तृत्वका विशेष गुण है।

'गवर्नमेट कालेज, लुधियाना' मे एकबार आप प्रवचन कर रहे थे। वहा धर्म प्रवचनका यह पहला अवसर था। बहुत सारे हिन्दू और सिक्ख विद्यार्थी जैन-साधुओंकी चर्यासे अनजान थे। उन्हें साधुओंको वेषभूषा भी विचित्र सी लग रही थी। वे प्रवचनकी अपेक्षा बाहरी स्थितियों पर अधिक ध्यान किये हुए थे। आपने स्थितिको देखा। उसी वक्त बाहरी स्थितिसे दूर भागने वाले विद्यार्थियोंको सम्बोधन करते हुए कहा—

"भाइयों! आप घवडाइये मत। आपके सामने ये जो साधु वैठे है, वे आप जैसे ही आदमी हैं। श्रेष्ठ आदमी है। सिर्फ वेपभूषाको देखकर आप इनसे दूर मत भागिए। ये तपस्वी है। इनके जीवनकी कठोर साधना है। ये पढ़े लिखे हैं। इनका सारा समय गम्भीर अध्ययन, चिन्तन, मननमे बीतता है। आप इनके सम्पर्कसे वहुत कुछ सीख सकते हैं।"

दो क्षणमे स्थिति बदल गई। उन्हें आन्तरिक जिज्ञासाका समाधान मिल गया। इसलिए वे इस आशंकासे हटकर प्रवचन सुननेमें एकाग्र हो गये।

आपके व्याख्यानकी सबसे बडी विशेषता यह है कि आप किसी पर आक्षेप नहीं करते। जो बात कहते हैं, वह सिद्धांतके रूपमे कहते हैं। अपनी बात कहते है, अपनी नीति बताते है, अपना मार्ग समझाते हैं। दूसरो पर प्रहार नहीं करते। दूसरों के गुणोकी चर्चा करनेमें आपको तनिक भी संकोच नहीं है। जो कोई दूसरों पर व्यक्तिगत या जातिगत आक्षेप करते हैं, उन्हें आप वहुत कमजोर, क्लीव समझते हैं। आप कई वार कहते हैं—

'दूकानदारका काम इतना ही है कि वह अपनी दूकानका माल दिखादे। किन्तु यह दूकानदार ऐसा है, वह वैसा है, यह करना ठीक नहीं। अगर उसका माल अच्छा है तो दुनिया अपने आप लेगी। अगर अच्छा नहीं है तो वह कितने दिनों तक दूसरो की बुराईपर अपना माल बेचेगा। आखिर अपनेमे अच्छाई होनी चाहिए। वह हो तो दूसरोंपर कीचड फेंकनेकी वात ही न सूझे।"

आप बचपनसे ही अध्यापन कार्यमे रहे है। इसलिए आपकी वक्तृतामे वह शैली झलक जाती है। प्रत्येक विषयका आदिसे अन्त तक निर्वाचन करना, व्युत्पत्तिसे फलित तक समझाना आपकी सहज प्रवृत्ति है। स्यात् किसी प्रौढ श्रोताको यह यत् किञ्चित् सा लगे किन्तु जनसाधारणके लिए विशेष उपयोगी है। जनसाधारणके हृदय तक पहुंचनेवालोंकी वाणीमे सरलता और सरसता हो, यह नितान्त वाञ्छनीय है।

आप व्याख्यानके बीच कहीं कहीं गायन को भी आवश्यक समझते है। ग्रामीण अथवा अपढ लोगोके बीच आप अधिकतया कथा और चित्रोका सहारा लेतेहै। उनके द्वारा गूढसे गूढ तत्त्व सरल बन जाता है, हृदयमे पैठ जाता है। पण्डितोमे उनकी भाषा तथा ग्रामीणोमे ग्रामभाषाके सहारे कार्य करना सफलताकी कुजी है। सब जगह एकसा बने रहनेका अर्थ है असफल होना। ग्रामीणोंके बीच बैठकर कोई पण्डिताई जचाए तो वे बेचारे क्या समझें। उन्हे कोई उन जैसा बनकर समझाए तो वे समझने को तैयार है। उनमे शहरी लोगोंकी भाति आग्रह, पक्षपात और बुराईके प्रति प्रेम नहीं है।

दिल्लीसे १० मील दूरी पर एक 'राई' ग्राम है। आप वहा पधारे। व्याख्यान हुआ। वहाके सैकडों ब्राह्मण और किसान सुनने आये। आपने तम्बाकू, व्यभिचार, शराब, खान-पानकी चीजोंमे मिलावट, कूड तोल-माप आदि बुराइयोंको उन्हें समझाया। उसी समय सैकड़ों व्यक्तियोंने इन सब बुराइयोंको छोडने

की प्रतिज्ञाकी और उन्होने अपनेको धन्य समझा। आपकी सार्व-जनीन वृतिका तब हृदयग्राही साक्षात् होताहै, जब आप गावोंकी जनताके वीच पहुचकर उनकी सीधी-सादी वोलीमे उन्हें जीवन-सुधारकी वातें सुनाते हैं, सत्य-अहिंसाका उपदेश देते हैं। आपकी इस लोकोत्तर प्रवृत्तिका उल्लेख करते हुए राष्ट्रपति डा० राजेन्द्र-प्रसादने वडे मार्मिक उद्गार व्यक्त किये है। वे अपने एक पत्रमे[1] लिखते हैं—

"उसदिन[2] आपके दर्शन पाकर वहुत अनुगृहीत हुआ। इस देशमें ऐसी परम्परा चली आई है कि धर्मोपदेशक धर्मका ज्ञान और आचरण जनताको मौखिक ही वहुत करके दिया करते है। जो विद्याध्ययन कर सकते है, वह तो ग्रन्थोका सहारा ले सकते है, पर कोटि कोटि साधा-रण जनता उस मौखिक प्रचारसे लाभ उठाकर धम-कम सीखती है। इसलिए जिस सहज सुलभ रीतिसे आप गूढ तत्त्वोका प्रचार करते है, वे सुनकर मै वहुत प्रभावित हुआ और आशा करता हू कि इस तरह का शुभ अवसर और भी मिलेगा।"

१—ता० ३।१।१०।४९

२— २१।१०।४९

कवि और लेखक

आपकी सर्वतोमुखी प्रतिभा प्रत्येक क्षेत्रमे अबाध गतिसे चमक रही है। साहित्य-जगत् आपके ऋणसे मुक्त नहीं है। आपकी अमर कृति 'कालु यशोविलास' साहित्य जगत्का एक देदीप्यमान रत्न है। उसमे शब्दोंका चयन, भावोंकी गम्भीरिमा, वर्णनाकी प्रौढता, परिस्थियोंका प्रकाशन, घटनाओंका चुनाव ऐसी भावुकताके साथ हुए हैं कि वह अपने परिचयके लिए पर-निरपेक्ष है। संगीतके मिठाससे भरापूरा वह महाकाव्य जैन-सन्तों की साहित्य-साधनाका जीवित प्रमाण है।

भारतीय साहित्यकी सन्तोंके मुँहसे प्रवाहित हुई धारा विश्व की सम्माननीय निधिमे अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाये हुए है। मोह-मायासे दूर तटस्थ वृत्तिमें रहनेवाले साधु-सन्तोंकी वाणीसे

जनताका असीम हित सध सकता है। आप अपने वीस वपके कवि-जीवनमे करीब दश हजार पद्य लिख चुके हैं। आपकी स्फुट लेख-सामग्री भी विचारकोंको प्रचुर मात्रामे स्वस्थ और स्फूर्तिप्रद मानसिक भोजन देती हैं। विदेशी सूत्रोंने भी आपके विचारोंका हार्दिक स्वागत किया है। विश्वके विभिन्न भागोमे होनेवाले सम्मेलनोंके अवसर पर दिये गये आपके वक्तव्य, सन्देश वडे मननीय है। उनमेसे कुछ एक ये है —

(१) [1]अशान्त विश्वको शान्तिका सन्देश

(२) [2]धर्म-रहस्य

(३) [3]आदर्श राज्य

(४) [4]धम सन्देश

(५) [5]पूर्व और पश्चिमकी एकता

१—लन्दनमे आयोजित 'विश्व-धर्म-सम्मेलन' के अवसरपर (आषाढ कृष्णा ४,२००१)

२—दिल्लीमें एशियाई कान्फ्रेन्सके अवसरपर भारतकोकिला सरोजिनी देवी नायडूकी अध्यक्षतामें २१ मार्च सन् १९४७ को आयोजित 'विश्व-धर्म-सम्मेलन' के अवसर पर।

३—ता० २३-३-४७ को दिल्लीमें प० जवाहरलाल नेहरूके नेतृत्वमें आयोजित एशियाई कान्फ्रेन्सके अवसर पर।

४—ता०११-३-४७ को हिन्दी तत्त्व-ज्ञान-प्रचारक समिति अहमदावाद द्वारा आयोजित 'धम-परिषद' के अवसरपर

५—लन्दनमें हुए जैन-धर्म सम्मेलनके अवसर पर

(६) ¹विश्वशान्ति और उसका मार्ग
(७) ²धर्म सब कुछ है, कुछ भी नहीं
(८) ³वाद का व्यामोह
(६) ⁴अपरिग्रह और अर्थवाद
(१०) ⁵संघर्ष कैसे मिटे ?
(११) ⁶विदाई सन्देश
(१२) ⁷धर्म और भारतीय दर्शन
(१३) ⁸गणतन्त्र की सफलताका आधार—अध्यात्मवाद
(१४) ⁹भारतीय संस्कृतिकी एक विशाल धारा

१—शान्ति-निकेतनमे आयोजित 'विश्व शान्ति सम्मेलन' के अवसर पर
२—जनवरी सन् १९५०, के दिल्लीके 'सर्व-धर्म-सम्मेलनके अवसर पर
३—भिवानी (पजाब) आषाढ (प्रथम) शुक्ला १४, स० २००७
४—दिल्ली—सब्जीमण्डीमें आयोजित 'साहित्य गोष्ठी' में ज्येष्ठ शुक्ला १२, स० २००७ (२८ मई, ५०)
५—नई दिल्ली 'सम्पादक-सम्मेलन' में दूसरा वक्तव्य ज्येष्ठ कृष्ण ३० (१६ मई, ५०)
६—आषाढ कृष्णा ८ गुरुवार, करोलबागमें, देहली से विदाईके अवसरपर
७—कलकत्तामे डा० राधाकृष्णनकी अध्यक्षतामें आयोजित भारतीय दर्शन-परिषद्' के रजत-जयन्ती समारोहके अवसर पर
८—हासी (पजाब), २६ जनवरी, १९५१
९—हासी (पजाब), आश्विन, २००७

इनमे 'अशान्त विश्वको शान्तिका सन्देश' यह आपका पहला सन्देश है। द्वितीय महासमरकी भीषण लपटोसे झुलसे हुए ससार ने इसका हार्दिक स्वागत किया। देश और विदेशमे सब जगह अच्छी प्रतिक्रिया हुई। महात्मा[1] गाधीने 'सन्देश' की पुस्तिकापर कई जगह टिप्पणियाँ लिखीं। शान्ति-सन्देश ता० २९-६-४५ के दिन दिया गया था परन्तु प्रकाशित काफी लम्बे समयके बाद हुआ, इसलिए भूमिकाके पृष्ठ पर महात्माजीने लिखा 'ऐसे सन्देश निकालनेमे देरी क्यो ?' विश्व-शान्तिके उपायोका निर्देश करते हुए 'सम्यक्त्व' का जिक्र किया गया है। उसके बारेमे पृष्ट ११ पर महात्माजीने लिखा है 'क्या इस सम्यक्त्वका प्रचार कियागया ?' पृष्ठ २१ पर विश्वशान्तिके सार्वभौम उपायोंका निर्देश करते हुए नौ बातें बतलाई गई हैं, इसपर टिप्पणी करते हुए लिखा है—'क्या ही अच्छा होता कि दुनिया इस महापुरुषके इन नियमोंको मान कर चलती।'

न्यूयार्कके साइरेक्यूज विश्वविद्यालयके डा० रेमन्ड एफ० पीपरने एक पत्रमे लिखाकि उन्होंने तुलनात्मक अध्ययनके लिए अपने छात्रोके पाठ्यक्रममे जैन तेरापन्थके नवमाचार्य श्रीमत् तुलसीरामजी महाराज द्वारा गत २६ जून १९४५ को दियेगये प्रवचन 'अशान्त विश्वको शान्तिका सन्देश'के महत्त्वपूर्ण अंशोको सम्मिलित कर लिया है।

१—जन-भारती जुलाई १९४७
२—जैन भारती मार्च १९४९

आचार्यश्रीके प्रवचन, कवित्व और लेखोंकी पंक्तियाँ रखे बिना ही आगे बढ़ूगा तो संभव है, पाठक अतृप्तिका अनुभव करेंगे। इसलिए मुझे अति कृपण क्यों होना चाहिए।

प्रवचनकी पँखुड़ियाँ

फूलकी कोमल पंखुडि यों मे आकर्षण होता है, इसमे कोई विवाद नहीं। वह कितना टिकता है, इसमे कुछ ऐसा वैसा है। ये प्रवचनकी पँखुडियाँ, हृदयकमलको विकसानेवाली पंखुडियाँ कितना आकर्षण, नहीं कितना स्थायित्व रखती हैं, इसका मनुष्यको ज्ञान है। आत्मनिष्ठ योगीकी साधनासे तपी वाणीको पीनेके लिए इसलिए लोग उमडते हैं कि उसका उनपर स्थायी असर होगा। स्थायी असर जितना ही नहीं, उससे कहीं अधिक महत्त्वका प्रश्न उनके हितका है। अहितकी बातका असर भी स्थायी होता है, पर उससे क्या बने। आचार्यश्री की प्रवचनवाणीमे जनताके हितकी जो साधना है, सही मार्ग-दर्शन है, उसका पूरा ब्यौरा देना मैं मेरी शक्तिके परे मानता हू। फिर भी कुछ एकका उल्लेख किये बिना नहीं रहूगा।

प्रवचनकार आचार्यश्री की जीवन-भूमिका आध्यात्मिक है। इसलिए आपकी वाणीमे उसीकी एकरसता है। अध्यात्मम व्यव-हारकी बात नहीं रहती, यह नहीं है। व्यवहारका शोधन अध्या-त्मसे ही होता है। जो लोग धर्मसे दूर भागकर जीवन चलानेकी बात करते हैं, उनको लक्ष्य कर आपने एक प्रवचनमे कहा—

"धर्म[1] से कुछ लोग चिढते है, किन्तु वे भूल पर है। धर्मके नाम पर फैली हुई बुराइयोंको मिटाना आवश्यक है, न कि धर्मको। धम जन-कल्याणका एकमात्र साधन है।"

आप यह मानते है कि आज धर्ममे विकार घुस आये है। आपका दृष्टि बिन्दु यह है कि धर्ममें घुसे हुए विकारोंको निकाल फेंको, धर्म फेंकने जैसी वस्तु है ही नहीं। आपके शब्दोंमे वह हमारे जीवनमे उतना ही आवश्यक है, जितना कि रोटी-पानी। आपने एक प्रवचनमे बताया :—

"जो[2] लोग धर्म त्याग देनेकी बात कहते है, वे अनुचित करते है। एक आदमो गन्दा विषैला पानीसे बीमार हो गया। अब वह प्रचार करने लगा कि पानी मत पीओ, पानी पीनेसे बीमारी होती है। क्या यह उचित है? उचित यह होता कि वह अपनी भूलको पकड लेता और गन्दा पानो न पीनेको कहता। धर्मका त्याग करनेकी बात कहनेवालोंको चाहिए कि वे जनताको धमके नामपर फैले हुए विकारोंको छोड़ना सिखाएं, धर्म छोड़नेकी सीख न दें।

१—१५ अगस्त १९४९ के प्रवचनसे
२—१ जून, १९४७ के प्रवचनसे

आप उस व्यापक धर्मको स्वीकार कर चलते हैं, जिसमें पूर्ण समता है। आपने एक भाषणमे कहा—

"धर्मके लिए भी जातिवादका प्रश्न उठता है ? खेद !! धर्म सबके लिए है। भगवान् महावीरके शासनकालमे हरिकेशी जैसे चाण्डाल मुनि बने और अपनी साधनाके उत्कर्षसे देवताओंके पूज्य बने। जैनोंको इस जातिवादके पचडेमे पडना उचित नहीं।"

मन्दिर और हरिजन-प्रवेशके प्रश्नको लेकर आपने कहा—

"लोग कहते हैं हरिजन मन्दिरमे नहीं जासकते। उन्हें धर्म करनेका अधिकार नहीं। भला यह क्यो ? धर्मका द्वार सबके लिए खुला है। वहा प्रतिबन्ध कैसा ? धर्मके क्षेत्रमे जातिजन्य उच्चता नहीं, वहाँ कर्मजन्य उच्चता होती है। धर्ममे वही ऊँचा है, जिसका जीवन उत्कृष्ट साधनामय हो। धार्मिक उच्चता हरिजन या महाजन सापेक्ष नहीं है। धर्म ब्राह्मणोका है, बनियोंका है, शूद्रोका नहीं—यह भ्रान्ति है। वर्ण और जातिमूलक भेद-भावको भुलाओ। भगवान् महावीर द्वारा उद्घोषित विश्वबन्धुत्वके आदर्शको जीवनमे उतारो।"

वाद

आजकी दुनियामें वादोंकी जो बाढसी आ रही है, उसका कारण आपने बडी मार्मिकतासे समझाया है —

"इस ससार-मञ्चपर बडी-बडी क्रान्तिया हुई। उनके फल-स्वरूप नये-नये वाद जन्मे। पुराने जमानेमें समाजवाद साम्यवाद जैसे वादोका नामतक नहीं था। आज इनकी बडी हलचल है।

इन वादोंके जन्मका कारण क्या है ? यह भी सोचा होगा। आप भिन्न-भिन्न वाद नहीं चाहते, फिर भी उनके पैदा होनेके साधन जुटा रहे हैं, आश्चर्य !! ये वाद दुखमय स्थितियोंसे पैदा हुए हैं। एक व्यक्ति महलमें बैठा मौज करे और एकको खाने तकको न मिले, ऐसी आर्थिक विषमता जनतासे सहन न हो सकी। अगर आज भी उच्चवर्ग सम्हल जाय, अपरिग्रहव्रतकी उपयोगिता समझ ले तो स्थिति बहुत कुछ सुधर सकती है।"

धर्मकी व्याख्या

आप धर्मकी व्याख्या बड़े सरल शब्दों करते हैं। उसे अनपढ़ आदमी भी हृदयङ्गमकर सकता है—

"....और धर्म क्या है ? सत्यकी खोज, आत्माकी जानकारी, अपने स्वरूपकी पहचान, यही तो धर्म है। सही अर्थमें यदि धर्म है तो वह यह नहीं सिखलाता कि मनुष्य-मनुष्यसे लड़े। धर्म नहीं सिखलाता कि पूंजीके माप-दण्डसे मनुष्य छोटा या बड़ा है। धर्म नहीं सिखलाता कि कोई किसीका शोषण करे। धर्म यह भी नहीं कहता कि बाह्य आडम्बर अपनाकर मनुष्य अपनी चेतना खो बैठे। किसीके प्रति दुर्भावना रखना भी यदि धर्ममें शुमार हो तो वैसा धर्म किस कामका। वैसे धर्मसे कोसों दूर रखना बुद्धिमत्ता-पूर्ण होगा।"

सादगी

आचार्यश्री किसी भी दशामें बाह्य आडम्बर और प्रदर्शनको पसन्द नहीं करते। आपने कार्यकर्ताओं के सम्मेलनमें उन्हें सम्बोधन करते हुए कहा—

"धार्मिक आयोजनोंमें आडम्बर और प्रदर्शनसे कार्यकर्ताओं

को सावधान रहना चाहिए। आत्मोत्साहमे भौतिक साधनोंका महत्त्व गौण है। धर्मकी प्रतिष्ठा धार्मिक प्रवृत्तियोसे ही बढ सकती है।

आप धर्ममे ज्ञान और श्रद्धाका पूर्ण सामञ्जस्य चाहते हैं। आपकी दृष्टिमे पुरुषोंमे जहा ज्ञान है, वहा श्रद्धाकी कमी है। महिलाएं श्रद्धासे परिपूर्ण हैं तो ज्ञानमे पीछे हैं। दोनों ओर अधूरापन है। आपने महिलाओंकी सभामे भाषण करते हुए कहा—

"ज्ञानके विना श्रद्धा अधूरी है। संस्कारी महिलाएं अपनी सन्ततिके लिए सच्ची अध्यापिकाएं होती है। उनके अज्ञानका परिणाम सन्ततिको भी भोगना पडता हैं।"

धर्मकी अगाध श्रद्धासे निकली हुई क्रान्ति-वाणी व्यवहार पर कैसा प्रतिविम्ब डालती है, उस पर भी हमे सरसरी दृष्टि डाल लेनी चाहिए।

'नवीनता और प्राचीनता,' 'युवक और वृद्ध आदि अवाञ्छनीय समस्याओंको सुलझानेमे आप वहुत सफल हुए है। इस वारेमे मैं आपकी वहुमूल्य वाणीको रखनेमे कृपण वनना पसन्द नहीं करूंगा। आपने वार-वार जनताको समझाया.—

"अमुक वस्तु नयी है, इसलिए बुरी है एवं अमुक वस्तु पुरानी है, इसलिए अच्छी है, यह कोई उपयुक्त तर्क नहीं। केवल प्राचीनता या नवीनता ही अच्छेपनकी कसौटी नहीं कही जा सकती। सभी नई वस्तुएं नई होनेके नाते ही अच्छी है या

खराब, ऐसा नहीं कहा जा सकता। यही बात पुरानी वस्तुओं के लिए भी लागू होती है। अच्छापन या बुरापन नवीनता या प्राचीनताकी अपेक्षा नहीं रखता। बहुत सी प्राचीन वस्तुएं भी अच्छी हो सकती हैं और नई भी। यह तो वस्तुके गुण पर निर्भर है। इसलिए नईका नाम सुनते ही उसका विरोध नहीं हो जाना चाहिए और इसी तरह पुरानीसे भी नाक-भौं सिकोडना ठीक नहीं। वास्तवमें अच्छेपन और बुरेपनको परखनेके उपरान्त ही कुछ निर्णय किया जा सकता है और यह उचित भी है।

इसलिए नवयुवकोंकी उचित मांगों पर अभिभावकगण सहिष्णुतासे विचार करें। यदि युवकोंके नये विचार बुजुर्गोंको ठीक नहीं जचते, तो उचित यह है कि वे प्रेमसे समझावें और अपने विचार उनके दिमागमें जचानेकी कोशिश करें। उनकी कुछ भी नहीं सुनकर केवल अपनी राग अलापना कि 'क्या करें, युवक हमारी मानते नहीं है' स्वयं अपना महत्त्व गँवाना है। क्यों नहीं वे अपने आपको ऐसा बनालें कि युवकोंको उनकी न्यायसंगत बातें माननी ही पडें। मगर यह तभी सम्भव है, जबकि परस्पर समन्वयात्मक रीतिसे बात की जाय। यदि वृद्ध और नौजवान दोनों इस तरहका व्यवहार काममे लायें तो यह आपसी संघर्ष बहुत शीघ्र दूर हो सकता है, जिसका दूर होना आवश्यक है।

मैं युवक-मानसको समझता हूं। वह क्रान्ति चाहता है। उसके लिए आन्दोलन करता है। आश्चर्य यह है कि वह अपना

सुधार भूल जाता है। यह क्या है? क्रान्ति है या भ्रान्ति? युवक स्वयं निर्णय करें।

सुधारका नशा नहीं होना चाहिए। सुधारक नई-पुरानी में नहीं उलझता। वह संयमकी ओर बढ़ता चला जाता है, अकेला नहीं दूसरोंको साथ लिये लिये।"

आप अपने विचारोंमें स्पष्ट हैं। प्रवचनके समय आप विचारोंको सूत्ररूपमें रखते हैं। वे थोड़ेमें ठेठ जनताके दिलमें चुभ जाते हैं। उदाहरणके रूपमें देखिये :—

"विश्वशान्तिके लिए अणुबम आवश्यक है, ऐसी घोषणा करनेवालोंने यह नहीं सोचा—यदि वह उनके शत्रुके पास होता तो।"

"दूसरा आपको अपना शिरमौर माने—तब आप उसके सुख-दुखकी चिंता करें। यह भलाई नहीं, भलाईका चोगा है।"

"मैं किसी एकके लिए नहीं कहता, चाहे साम्यवादी, समाजवादी या दूसरा कोई भी हो; उन्हें समझ लेना चाहिए कि दूसरों का इस शर्त पर समर्थन करना कि वे उनके पैरों तले चिपटे रहें, स्वतन्त्रताका समर्थन नहीं है।"

"न्याय और दलबन्दी ये दो विरोधी दिशाएं हैं। एक व्यक्ति एक साथ दो दिशाओंमें चलना चाहे, इससे बड़ी भूल और क्या हो सकती है?"

"स्वतन्त्र वह है, जो न्यायके पीछे चलता है। स्वतन्त्र वह है, जो अपने स्वार्थके पीछे नहीं चलता। जिसे अपने स्वार्थ और गुटमें ही ईश्वर-दर्शन होता है, वह परतन्त्र है।"

"अध्यात्मप्रधान भारतीयोंमे अमानवीय बातें अधिक अखरने वाली है।"

"वह दिन आनेवाला है, जब कि पशुबलसे उकताई हुई दुनिया भारतीय जीवनसे अहिंसा और शान्तिकी भीख मांगेगी।"

"हिंसा और स्वार्थकी नींव पर खडा किया गया वाद भले ही आकर्षक लगे, अधिक टिक नहीं सकता।"

"प्रकृतिके साथ खिलवाड करनेवाले इस वैज्ञानिक युगके लिए शर्मकी बात है कि वह रोटीकी समस्याको नहीं सुलझा सकता। सुखसे रोटी खा जीवन बिताना, इसमे बुद्धिमान् मनुष्यकी सफलता नहीं है। उसका कार्य है आत्मशक्तिका विकास करना, आत्मशोधनोन्मुख ज्ञान-विज्ञानकी परम्पराको आगे बढाना।"

आपके शब्दोंमे हमे नास्तिकताकी बडी युगानुकूल व्याख्या मिलती है :—

"आजकी दुनियाकी दृष्टि धन पर ही टिकी हुई है। धनके लिए ही जीवन है, लोग यों मान बैठे है। यह दृष्टिदोष है—नास्तिकता है। जो वस्तु जैसी नहीं, उसको वैसी मान लेना ज्यों मिथ्यात्व है, त्यों साधनको साध्य मान लेना क्या नास्तिकता नहीं है ?

धन जीवनके साधनोंमेसे एक है, साध्य तो है ही नहीं। इस नास्तिकताका परिणाम—पहली मंजिलमे शोषण आखिरी मंजिल मे युद्ध है।"

आप सामयिक पदार्थाभावका विश्लेपण करते हुए बडा

मननीय दृष्टिकोण सामने रखते है। यह दूसरी बात है कि भूत-वादके राग-रंगमे फंसी दुनियां उसे न समझ पाये अथवा समझ-कर भी न अपना सके, किन्तु वस्तु स्थिति इसके साथ है—

"लोग कहते है—जरूरतकी चीजें कम हैं। रोटी नहीं मिलती कपडा नहीं मिलता। यह नहीं मिलता, वह नहीं मिलता आदि आदि। मेरा खयाल कुछ और है। मैं मानता हू कि जरूरतकी चीजें कम नहीं, जरूरतें बहुत बढ चली, संघर्ष यह है। इसमेसे अशान्तिकी चिनगारिया निकलती हैं।"

वाहरी नियन्त्रणमे आपकी विशेष आस्था नहीं है। नियम आत्मामे वैठकर जो असर करता है, उसका शतांश भी वह वाहर रहकर नहीं कर सकता। इसको वार-वार वडी वारीकीके साथ समझाते हैं—

"सफलताकी मूल कुञ्जी जनताकी भावना है। उसका विकास संयममूलक प्रवृत्तियोके अभ्याससे ही हो सकता है।

नैतिक उत्थान व्यक्ति तक ही सीमित रहा तो उसकी गति मन्द होगी। इसलिए इस दिशामें सामूहिक प्रयास आवश्यक है। यह प्रश्न हो सकता है, अक्सर होता ही है। इसका उत्तर सीधा है। मैं न तो राजनैतिक नेता हू, न मेरे पास कानून और डण्डेका वल है। मेरे पास आत्मानुशासन है। अगर आपको जचे, तो आप उसे लें।

आप जन-तन्त्रको सफल वनाना चाहते हैं तो आत्मानुशासन सीखें। मेरी भाषामे स्वतन्त्र वही है, जो अधिकसे अधिक

नियमानुवर्ती रहे। औरोंके द्वारा नहीं, अपने आप अनुशासन में चलना सीखे। चलानेसे पशु भी चलता है। किन्तु मनुष्य पशु नहीं है।

आजका संसार राजनीतिमय बन रहा है। जहाँ कहीं सुनिये, उसीकी चर्चा है, मनुष्यको बहिर्मुखी दृष्टिने उसे सत्ता और अधिकारोंका लालची बना दिया। इसलिए वह और सब बातोंको भुलाकर मारा-मारा उसीके पीछे फिर रहा है।-इसीसे चारों ओर अशान्तिकी ज्वाला धधक रही है। आप सुखके मार्गमें राजनीति के एकाधिकारको बाधक मानते हैं :—

"राजनीति लोगोंके जरूरतकी वस्तु होती होगी किन्तु सबका हल उसीमें ढूंढना भयंकर भूल है। आजकी राजनीति सत्ता और अधिकारोंको हथियानेकी नीति बन रही है। इसीलिए उस पर हिंसा हावी हो रही है। इससे संसार सुखी नहीं होगा। संसार सुखी तब होगा, जब ऐसी राजनीति घटेगी; प्रेम, समता और भाईचारा बढ़ेगा।"

हम धर्मसे चले और व्यवहारके मार्गमें घूम फिरकर वापिस मूलकी जगह लौट आये। यहींपर हमें आचार्यश्रीकी आध्यात्मिक जागृतिका आभास होता है। इससे वह भ्रान्त धारणा भी निर्मूल होगी, जैसा कि लोग समझते हैं—धर्माचार्य उन्हें वर्तमान जीवन के कामकी बातें नहीं बताते।

अवश्य ही निवृत्ति प्रवृत्तिसे आगे है। किन्तु इनका आपसमें सर्वथा विरोध है, यह बात नहीं। प्रवृत्ति निवृत्तिके सहारे सत्

बनती है। धर्माचार्य प्रवृत्तिका निर्देशन न करें, इसका अर्थ यह नहीं कि सत्प्रवृत्तिका मार्ग दिखाना उनके लिए आवश्यक नहीं है। है। और फिर है। जनता उनसे आशा रखती है और मार्ग-दर्शन चाहती है आचार्यश्रीने इसी दिशामें संसारको ऋणी बनाया है।

कविकी तूलिकाके कुछ चित्र

प्रश्न टेढ़ा है। कवि किस तूलिकासे काम ले? मस्तिष्ककी तूलिकाके पास आकार है। हृदयकी तूलिकाके पास चैतन्य है। हाथकी तूलिका रंग भरना जानती है। तीनो भिन्न है और तीनों सापेक्ष। कवि सयाना होता है, समझौतावादी होता है। तीनों को एक साथ राजी बनाये चलता है। एक स्त्रीको निभानेमे कठिनाई होती है, वहाँ तीन-तीन रमणियोंको निभाते चलना कितना कठिन है, इसे सहृदय ही समझ सकता है। आशा है, काव्यमर्मज्ञ इसमे साथ देंगे। मैं अधिक लम्बा नहीं जाऊंगा। मुझे पाठकोंकी जिज्ञासाका खयाल है।

मेवाड़के लोग श्री कालुगणीको अपने देश पधारनेकी प्रार्थना करने आये हैं। उनके हृदयमे बडी तडफ है। उनकी अन्तर-

भावनाका मेवाडकी मेदिनीमे आरोप कर आपने बडा सुन्दर चित्रण किया है —

* "पतित-उधार पधारिये, सगे सबल लहि थाट।
मेदपाट नी मेदिनी, जोवे खडि खडि वाट॥
सघन शिलोच्चयनै मिषे, ऊचा करि-करि हाथ।
चचल दल शिखरी मिषे, दे झाला जगनाथ॥
नयणा विरह तुमारडै, झरै निझरणा जास।
भ्रमराराव भ्रमे करी, लहु लावा नि श्वास॥
कोकिल कूजित व्याज थी, व्रतिराज उडावै काग।
अरघट खट खटका करी, दिल खटक दिखावै जाग॥
मैं अबला अचला रही किम पहुचै मम सन्देश।
इम झुर झुर मनु झूरणा, सकोच्यो तनु सुविशेष॥"

इसमे केवल कवि-हृदयका सारस्य ही उद्वेलित नहीं हुआ है किन्तु इसे पढते-पढते मेवाडके हरे-भरे जंगल, गगनचुम्बी पर्वत-माला, निर्झर, भँवरे, कोयल, घडियाल और स्तोकभूभागका साक्षात् हो जाता है। मेवाडकी ऊ ची भूमिमे खडी रहने का, गिरिश्रृङ्खलामे हाथ ऊ चा करने का, वृक्षोंके पवन-चालित दलोंमें आह्वान करने का, मधुकरके गुञ्जारवमें दीर्घोष्ण नि श्वास का, कोकिल-कूजनमे काक उडानेका आरोपण करना आपकी कवि-प्रतिभाकी मौलिक सूझ है। रहॅटकी घड़ियोंमे दिलकी टीसके

---

* कालु यशोविलास

साथ-साथ रात्रि-जागरणकी कल्पनासे वेदनामें मार्मिकता आ जाती है। उसका चरम रूप अन्तजगत्‌में न रह सकनेके कारण बहिर्जगत्‌में आ साकार बन जाता है। उसे कवि-कल्पना सुनाने की अपेक्षा दिखानेमें अधिक सजीव हुई है। अन्तर-व्यथासे पीड़ित मेवाडकी मेदिनीका कृश शरीर वहाकी भौगोलिक स्थिति का सजीव चित्र है।

मघवा गणीके स्वर्गवासके समय कालुगणीके मनोभावोंका आकलन करते हुए आपने गुरु-शिष्यके मधुर सम्बन्ध एवं विरह-वेदनाका जो सजीव वर्णन किया है, वह कविकी लेखनीका अद्भुत चमत्कार है:—

* "नेहडला री क्यारी म्हारी, मूकी निरावार।
इसडी का कीधी म्हारा, हिवडे रा हार॥
चितड़ो लाग्यो रे, मनडो लाग्यो रे।
खिण खिण समरू, गुरु थारो उपगार रे॥
किम बिसरायो म्हारा, जीवन - आधार॥
विमल विचार थारू, अव्वल आचार रे।
कमल ज्यू अमल, हृदय अविकार॥
आज सुदि कदि नही, लोपी तुज कार रे।
वह्यो वलि वलि तुम, मीट विचार॥
तो रे क्या पधारंथा, मोये मूकी इह वार रे।
स्व स्वामी रु शिष्य-गुरु, सम्बन्ध ' विसार॥

---

* कालु यशोविलास।

पिण साची जन-श्रुति, जगत् मझार रे।
एक पक्खी प्रीत नही, पड़ै कदि पार॥
पिऊ पिऊ करत, पपैयो पुकार रे।
पिण नही मुदिर नै, फिकर लिगार॥"

जैन-कथा-साहित्यमे एक प्रसंग आता है। गजसुकुमार, जो श्रीकृष्णके छोटे भाई होते थे, भगवान् अरिष्टनेमिके पास दीक्षित वन उसी रातको ध्यान करनेके लिए श्मशान चले जाते हैं। वहाँ उनका श्वसुर सोमिल आता है। उन्हें साधु-मुद्रामे देख उसके क्रोधका पार नहीं रहता। वह जलते अंगारे ला मुनिके शिर पर रख देता है। मुनिका शिर खिचडीकी भाति कलकला उठता है। उस दशामे वे अध्यात्मकी उच्च भूमिकामे पहुच 'चेतन-तन-भिन्नता' तथा 'सम शत्रौ च मित्रे च' की जिस भावनामे आरूढ होते हैं, उसका साकार रूप आपकी एक कृतिमें मिलता है। उसे देखते-देखते द्रष्टा स्वय आत्म-विभोर वन जाता है। अध्यात्मकी उत्ताल उर्मियाँ उसे तन्मय किये देती हैं :—

"जब धरे शीश* पर खीरे,
ध्यावे यो धृति-धर धीरे।
है कौन वरिष्ट भुवन में,
जो मुझको आकर पीरे॥
मैं अपनो रूप पिछानू,
हो उदय ज्ञानमय भानू।

---

* गजसुकुमार

वास्तवमे वस्तु पराई,
क्यो अपनी करके मानू ॥
मैने जो सकट पाये,
सब मात्र इन्ही के कारण ।
अब तोड़ू सब जजीरे,
ध्यावे यो धृति धर धारे ॥

कबके ये बन्धन मेरे,
अबलो नहीं गये बिखेरे।
जबसे मैंने अपनाये
तब से डाले दृढ डेरे॥
सम्बन्ध कहा मेरे से,
कहा भैस गाय के लागे।
है निज गुण असली हीरे,
ध्यावे यो धृति धर धीरे॥

मै चेतन चिन्मय चारू,
ये जडता के अधिकारू।
मै अक्षय अज अविनाशी,
ये गलन-मिलन विशरारू॥
क्यो प्रेम इन्हीसे ठायो,
दुर्गतिकी दलना पायो।

अब भी हो रहू प्रतीरे
ध्यावे यो धृति धर धीरे ॥

यह मिल्या सखा हितकारी,
उत्तारूँ अघ की भारी।
नहि द्वेष-भाव दिल लाऊँ,
कैवल्य पलक मे पाऊँ ॥
सच्चिदानन्द बन जाऊँ,
लोकाग्र स्थान पहुँचाऊँ।
प्रक्षय हा भय प्राचीरें,
ध्यावे यो धृति धर धीर ॥

नहि मरू न कबही जन्मू,
कहि परू न जग झंझट म।
फिर जरूँ न आग लपटमें,
झर पडू न प्रलय-झपट मे ॥
दुनिया के दारुण दुखमें,
धधकत शोकानल धक में।
नहि धुकु सहाय समीरे,
ध्यावे यो धृति धर धीरे ॥
नहि बहूँ सलिल - स्रोतो मे,
नहि रहूँ भग्न - पातो में।

नहिं जहूँ रूप मे म्हारो,
नहिं लहूँ कष्ट मोतो में ॥
नहिं छिदूं धार तलवारा,
नहिं भिदूं भल्ल भलकारा।
चढ़े आये शत्रु सभीरे,
ध्यावे यो धृति धर धीरे।"

इसमें आत्म-स्वरूप, मोक्ष, संसार-भ्रमण और जड तत्त्वकी सहज-सरल व्याख्या मिलती है। वह ठेट दिलके अन्तरतलमे पैठ जाती है। दार्शनिककी नीरस भाषाको कवि किस प्रकार रस-परिपूर्ण बना देता है, उसका यह एक अनुपम उदाहरण है।

आप केवल अध्यात्मवादी कवि ही नहीं है, दुनियाकी समस्याओं पर भी आपकी लेखनी अविरल गतिसे चलती है। वर्तमानकी कठिनाइयोंको हल करनेमे आपमें दार्शनिक चिन्तन, साधुका आचरण और कविकी कल्पना—इस त्रिवेणीका अपूर्व संगम होता है।

"मानवता की हत्या करके,
क्या होगा उच्चासन वरके।
आखिर तो चलना है मरके,
ए जननी के लाले तुच्छ स्वार्थ तजो।
आजादी के रखवाले तुच्छ स्वाथ तजो ॥
अपनी मे में मतवाले तुच्छ स्वार्थ तजो ॥

भ्रष्टाचार घुस घर - घर में,
चोर - बजारी चले सदर में।
पाप - भीति नहीं नर के उर में,
कलियुग के उजियाले तुच्छ स्वार्थ तजो ॥"

"हल है हलकापन जीवन का,
है एकमात्र अनुभव मनका।
आडम्बर और दिखाव तजो,
अब तो कुछ सादापन लाओ ॥
ए दुनियावालो सुनो जरा,
दिल की दुविधा को दफनाओ।
जीवन में सत्य अहिंसा को,
ज्यादा से ज्यादा अपनाओ ॥
यह सत्य - अहिंसा से सम्भव,
है सत्य अहिंसा भी तद्भव।
सम्बन्ध परस्पर है इनका,
अनुरूप पात्र तुम बन जाओ ॥
ए दुनिया वालो··· ·· · ·
··· · ··· , "

धार्मिक जगत्मे आपने अपनी ओजस्वी वाणी द्वारा जो क्रान्ति-घोष किया है, वह धर्मकी रीढको स्वस्थ बनानेके साथ उसके नाम पर आडम्बर रचनेवाले रूढिवादी धार्मिकको चुनौती

देता है। उसकी मस्तीमें बाधा डाल और सुख-सपनोंको चूर-चूर कर आगे बढ़ता है।

धर्म अमर है। धर्म सदा विजयी है। धर्ममें श्रद्धा और ज्ञान दोनों अपेक्षित हैं। इन भावनाओंका आपने 'अमर रहेगा धर्म हमारा', 'धर्मकी जय हो जय', 'सुज्ञानी दृढ़धर्मी बन जाओ' शीर्षक कविताओंमें दिलको हिलानेवाला विवेचन किया है।

धर्म पर आक्षेप करनेवालोंको सक्रिय उत्तर देनेके लिए आप धार्मिकोंको जो प्रेरणा देते हैं, उसमें आपकी सत्य-निष्ठा झलक पड़ती है :—

"धार्मिक जन कायर बनजावे,
यह आक्षेप हृदय अकुलावे।
मूल-भंजन हो तुरत इसीका,
ऐसा क्रान्ति उठाओ।
सुज्ञानी दृढ़धर्मी बनजाओ॥
भूली भटकी इस दुनिया का,
सच्ची राह दिखाओ।
सुज्ञानी दृढ धार्मिक बनजाओ।
मानवता से मनुज कहाए,
मानवता धार्मिकता चाहे।
बिन धार्मिकता जो मानवता,
दानवता दरशाओ।
सुज्ञानी दृढ धार्मिक बन जाओ॥

छिन - छिन में अपने जीवनमें,
मति क्षति लाओ धार्मिकपन में।
धर्मस्थान ही धार्मिकता हित,
मति इम मन बहलाओ।
सुज्ञानी दृढ धार्मिक बनजाओ ॥
व्यक्ति-जाति-हित देश-राष्ट्र-हित,
धार्मिकतामें निहित सकल हित।
अहित किते निज कर्म-योग लख,
धर्म - दोष मत गाओ।
सुज्ञानी दृढ धार्मिक बनजाओ ॥"

इस प्रकार आपने अपने कवि-जीवनमे प्रत्येक क्षेत्रका स्पर्श किया है। जनसाधारणसे लेकर प्रतिभा-प्रभु व्यक्ति तकको नव-चैतन्यपूर्ण सामग्री दी है। जिससे कंठके स्वर, मस्तिष्कके सुकुमार तन्तु, हृदयके प्रफुल्ल सरोज और आत्माकी अनुभूतिमे सहज चैतन्य भर आता है।

विचारककी वीणाका झङ्कार

विचार सन्तोंका साम्राज्य है। सत्ताका साम्राज्य जमता है, उखड जाता है। सन्त-विचार सिर्फ माथेकी उपज नहीं होता। वह द्विजन्मा होता है, मस्तिष्कसे हृदयमें उतरता है, वहा पकनेपर फिर बाहर आता है। उसका शासन इतना मजबूत होता है कि वह मिटाये नहीं मिटता। इसोलिए तो सन्तवाणी अमरवाणी कहलाती है। मैंने उसे वीणाका झंकार कहना इसलिए पसंद किया है कि उससे हृदयका तार झंकृत हो उठता है। माथेकी वाणीमे जहा सौ तर्क-वितर्क उठते हैं, वहा हृदयकी वाणीसे हृदय जुड जाता है। देखिए जातिवादका कितना गहरा सम्बन्ध है।

आचार्यश्री मेरी दृष्टिमे मस्तिष्कवादी विचारक नहीं है। इसलिए मैं पाठकोंसे यह अनुरोध करना नहीं चाहूगा कि वे

आपके विचारोंकी गहराईको तोलें। मैं सिर्फ इतना ही कहूगा कि आचार्यश्री के हृदयको समझनेकी चेष्टा करें। आपने अध्यात्म-वादकी उपयोगिताको बड़े मार्मिक शब्दोंमें समझाया है —

"अपने लिए अपना नियन्त्रण, यही है थोडेमे अध्यात्मवाद। दूसरोंके लिए अपना नियन्त्रण करनेवाला—दूसरो पर नियन्त्रण करनेवाला भी दूसरोको धोखा दे सकता है। किन्तु अपने लिए अपना नियन्त्रण करनेवाला वैसा नहीं कर सकता।"

अध्यात्मवादके बारेमे बडे बडे दिमागी लोग भ्रान्त रहते हैं। वे उसे दूसरी दुनियाकी वस्तु मानते हैं। वस्तुस्थिति वैसी नहीं है। अध्यात्मवाद आत्मवादीके लिए जितना आवश्यक है, उतना ही आवश्यक एक संसारी प्राणीके लिए है। कारण कि उसके बिना मनुष्यका व्यवहार भी प्रामाणिकतासे चल नहीं सकता।

आपके विचारानुसार भौतिकवाद इसी युगकी देन नहीं है और न उसके बिना दुनियाका काम भी चल सकता। किन्तु उसीका प्राधान्य रहे, यह ठीक नहीं।

भलाई और बुराई दोनों साथ-साथ चलती हैं। यह जगत् न तो कभी बिल्कुल भला बना और न कभी बिल्कुल बुरा। सिर्फ मात्राका तारतम्य होता है। हमारा प्रयत्न ऐसा हो कि भलाई की मात्रा बढे। हम यह सोच बैठ जायें कि बुराई आज तक नहीं मिटी तो अब कैसे मिटेगी, यह निराशा है। इसका परिणाम बुराई को सहयोग देना है। हमे पवित्र उद्देश्यके साथ बुराईके विरुद्ध संघर्ष करते रहना चाहिए।

अध्यात्मवाद विवादसे परे है। इसकी चर्चा करते हुए आपने लिखा है —

"अध्यात्मशब्द मात्रका वाद है, वास्तविक नहीं। वास्तवमे तो वह आत्माकी गति है। बलात् दूसरों पर अपनी संस्कृति या वाद लादनेकी चेष्टाका दूसरा रूप है संघर्ष। मै नहीं चाहता कि ऐसा हो। फिर भी मैं प्रत्येक विचारक व्यक्तिसे यह अनुरोध करूंगा कि वे अध्यात्मवादको अपनाएं। यह किसी देश या जातिका वाद नहीं, आत्माका वाद है। जिसके पास आत्मा है, चैतन्य है, हेयोपादयकी शक्ति है, उसका वाद है, इसलिए उसकी जागृति करना अपने आपको जगाना है।"

आत्म-जागरणकी इस विचारधारामे स्व-पर, जात-पांत, देश-विदेशसे ऊपर रहनेवाले तत्त्वकी सृष्टि होती है। वह अभेद सत्तामे सबको समाहित किये चलता है। उसमें द्वैध नहीं होता। बिना उसके संघर्षकी बात ही क्या। भेदकी कल्पना व्यवहारके लिए है। आगे जाकर वह वास्तविक बनजाती है। उससे अहंभाव और जय-पराजयकी कल्पना पैदा होती हैं। उससे संघर्षका बीज उगता है।' फिर युद्ध आदिकी परंपराएँ चलती है। इसलिए विश्व-शान्तिकी बातको सोचनेवालोंको सबसे पहले आत्म-जागरणकी बात सोचनी चाहिए। आत्म-जागरणमे श्रद्धा पैदा कर अपने आपको सुधारना चाहिए। धार्मिकका यही कर्त्तव्य है। इस विषयको आपकी लेखनीने बडी कुशाग्रतासे छुआ है।

"मनुष्य अपना सुधार नहीं चाहता। समाजका सुधार

चहता है। स्वयंको सुधारे विना समाजका सुधार नहीं होसकता। अपनी बुराईका प्रतिकार किये विना समाजके सुधारकी बात सोचना धर्मकी मौलिकताको न समझनेका परिणाम है। धम व्यक्तिनिष्ठ होता है। वह कहता है—प्रत्येकका सुधार ही समाज का सुधार है।"

आप पर-सुधारसे पहले आत्म-सुधारको आवश्यक समझते हैं। कोरी सुधारकी बातोसे कुछ बनता नहीं। लोग धर्मके प्रति गाढ श्रद्धा दिखाते है। उसके स्थायित्व की चिन्ता करते हैं। किन्तु विवेक, मर्यादाको नहीं निभाते। आप उन्हें कड़ी चेतावनी देते है —

"लोगोंको इस बातकी चिन्ता है कि कहीं साम्यवाद आगया तो हमारे धर्म-कम मिट जायेंगे। मैं पूछना चाहता हू—यह हृदय की बात है या बनावटी? यदि सचमुच चिन्ता है तो संग्रह क्यों? संग्रहका अर्थ है धर्मका नाश, पापका पोषण। दूसरेका पैसा चुराये बिना, अधिकार लूटे बिना पूजीका केन्द्रीकरण हो नहीं सकता?"

राजनैतिक सत्ताका राष्ट्रकी भौतिक समस्याओसे सम्बन्ध है। इसलिए धार्मिको को डरनेकी कोई आवश्यकता नहीं। किसी पार्टीका शासन हो, धर्मका क्या बिगाड सकता है। विशुद्ध धर्म न उसके हितोंमे बाधक बनता और न उसको जनताके धार्मिक भावोंमे बाधक बनना चाहिए। धर्मका कहीं भी कुछ मात्रामे विरोध हुआ है, वह विशुद्ध धर्मका नहीं, धर्मके वेषमे पनपनेवाली

राजनीतिका हुआ है। आपने इसे बड़ी दृढ़ताके साथ व्यक्त किया है :—

"धर्म अपनी मर्यादासे दूर हटकर राज्यकी सत्तामे घुल-मिल कर विषसे भी अधिक घातक बन जाता है। यह वाणी धर्मद्रोही व्यक्तियों की है, यह नहीं माना जा सकता, धर्मके महान् प्रवर्तक भगवान् महावीर की वाणीमे भी यही है। धन और राज्यकी सत्तामे विलीन धर्मको विष कहाजाये, इसमे कोई अति-रेक नहीं है।"

धर्मके प्रति धर्माचार्यकी ऐसी कटु आलोचना अध्यात्मके उज्ज्वल पहलू की ओर संकेत करती है। प्रत्येक व्यक्तिको समझना चाहिए कि धर्ममें श्रद्धाका स्थान है, अन्धश्रद्धाका नहीं। आपका किसी वस्तुके प्रति आग्रह नहीं है। आपकी दृष्टि उसके गुणाव-गुणकी परखकी ओर दौड़ती है। आपकी लेखनी न्यायकी उपेक्षा और अन्यायसे समझौता नहीं कर सकती। पत्रकार-सम्मेलनमे आपने बताया :—

"आर्थिक वैषम्यको लेकर जो स्थिति बिगड़ रही है, उसे भी हम दृष्टिसे ओझल नहीं कर सकते। मेरी दृष्टिमे साम्यवाद इसीका परिणाम है।...... लोग मुझसे पूछते हैं—क्या भारतमे साम्य-वाद आयेगा? मैं इसके लिए क्या कहूं? यही कहना पड़ता है—आप बुलायेंगे तो आयेगा, नहीं तो नहीं। जिनके हृदयमे धर्मकी तड़फ है, उसकी रक्षाकी चिन्ता है, वे अर्थ-संग्रह करना छोड दें। उनकी भावना अपने आप सफल हो जायेगी। दान करनेके लिए

भी आप संग्रहकी भावना मत रखिए। दुनिया आपके दानकी भूखी नहीं है। उसे आपके संग्रहपर रोष है। यदि पूँजीपति इसे नहीं समझ पाये तो चालू वेग न अणुबमसे रुकेगा, न अस्त्र-शस्त्रोंके वितरण से। . . .. आप यह मत समझिए कि मैं साम्यवादका समर्थक हू। मुझे साम्यवाद त्रुटिपूर्ण दिखाई देता है, पूँजीवाद तो है ही। .. राष्ट्रीय पूजी-संग्रह भी उतना ही बुरा है, जितना व्यक्तिगत। जवतक इच्छाओंको सीमित करनेकी वातका यथेष्ट प्रचार नहीं होगा, तबतक आवश्यकता-पूर्तिके साधनोंका समाजीकरण केवल बाह्य उपचार होगा। व्यक्तिकी स्थिति राष्ट्र लेलेगा। एक राष्ट्र दूसरे राष्ट्रका शोषक बन जायगा। . आर्थिक समानताका सूत्र पूँजीपतियोंको ही अप्रिय लगेगा, किन्तु इच्छा-नियन्त्रणका सूत्र पूँजीपति और गरीव दोनोंको अप्रिय लगेगा। लगे, यह तो रोगका उपचार है। इसमे प्रिय-अप्रिय लगनेका प्रश्न ही नहीं होता।"

ऊपरकी पंक्तियाँ यह साफ बताती हैं कि लोग कठिनाइयाँ चाहते नहीं, किन्तु अज्ञानवश उन्हें निमन्त्रण देते है। इसीलिए पूर्व-ऋषियोंने बताया है—"अज्ञान ही सबसे बडा दु ख है।" यदि मनुष्य वस्तुस्थितिको जानले, श्रद्धापूर्वक मानले तो फिर वह अपने हाथों अपना मार्ग कण्टकाकीर्ण नहीं बना सकता। लोग शान्ति के पिपासु हैं, फिर भी शान्ति मिल नहीं रही है। आपकी भाषा मे उसका सरल मार्ग मिलता है—

"अपनी शान्तिके लिए दूसरेकी शान्तिका अपहरण मत करो

—यही सच्ची शान्ति है। क्षणिक शान्तिके लिए स्थायी शान्तिको खतरेमे मत डालो—इसका नाम है सच्ची शान्ति। शान्तिके लिए अशान्तिको उत्पन्न मत करो—यह है सच्ची शान्ति। शान्तिके इच्छुक हो तो शान्तिके पथपर चलो। यही सच्ची शान्तिका सही रास्ता है।"

आपकी विचारधारामे असीम धार्मिक औदार्य है। वर्तमान स्थितिको समन्वित करनेकी क्षमता है। लोक-स्थितिको समझे बिना कोई व्यक्ति व्यवहारदक्ष नहीं बन सकता। एक कविने कहा है—

"काव्य करोतु परिजल्पतु संस्कृत वा,
सर्वा. कला समधिगच्छतु वाच्यमाना।
लोकस्थिति यदि न वेत्ति यथानुरूप,
सर्वस्य मूर्खनिकरस्य स चक्रवर्ती॥"

आपने अनेकान्त दृष्टिको केवल सिद्धान्तरूपसे ही स्वीकार नहीं किया है, आप अनेकों प्रयोग और शिक्षाएँ उसके सहारे फलित करते हैं। आजके राजनीतिक या वैज्ञानिक जो धर्म पर आस्था नहीं रखते, लोगोंकी दृष्टिमे वर्तमान अनैतिकताके लिए उत्तरदायी हैं। किन्तु आप इस कसौटीको एकान्ततः सही नहीं मानते। 'लन्दन-जैन-कॉन्फ्रेन्सके लिए दिये गये सन्देशमे आपने कहा है :—

"आजके राजनीतिकोंने धर्मको अफीम बताकर जनताके रुखमे परिवर्तन ला दिया। अतएव वर्तमान युग धर्मका उतना

प्यासा नहीं रहा, जितना पहले था। इससे सुधार भी हुआ है, भूल भी। भोगमें त्याग और परिग्रहमे धर्मकी भावना जमी हुई थी, धर्मके नामपर हिंसा होती थी, उससे जनताकी आस्था हटी, यह श्लाघनीय सुधार है। मानव-शरीरमे दानवकी आत्मा उतनी खतरनाक नहीं होती, जितनी खतरनाक धर्मकी पोशाकमें अधर्म की पूजा होती है।

इसके साथ-साथ भौतिक सुख-सुविधाओंको ही जीवनका चरम लक्ष्य मानकर आत्मा और धर्मकी वास्तविकताको भुला बैठे, यह वज्र भूल है।"

युग एक प्रवाह होता है। उसमे बहनेवालोंकी कमी नहीं होती। आचार्य श्री हमें बहुत बार कहा करते हैं :—

"अनुस्रोतगामी होना सहज है। अपनी सत्य श्रद्धाको लिये हुए प्रतिस्रोतमें चले, कष्टोंको सहे, विचलित न हो, उसकी बलिहारी है।"

आप अपने विचारोंके पक्के और अप्रकम्प हैं। जन्म-जयन्ती मनाने पर आपका विश्वास नहीं है। लोगोंने आपकी जन्म जयन्ती मनानेके लिए बहुत प्रार्थनाएं की, किन्तु आपने उसे स्वीकार नहीं किया। आप कहते हैं :—

'जयन्ती किसी विशेष कार्य की हो, अथवा निर्वाण की हो, वह उचित है। निर्वाणके दिन समूचे जीवनका लेखा-जोखा सामने आ जाता है। उसे आदमी देख सकता है, सीख सकता है।"

जो लोग जन्म-जयन्ती मनाते हैं, उनसे आपका कोई विरोध नहीं है। आप कहते है :—

"मेरी धारणा ऐसी है। जो मनाते है, उनकी अपनी इच्छा।"

आपने धार्मिक जगत्की, जैनोंकी तथा युगकी विभिन्न समस्याओंके विभिन्न पहलुओं पर चेतक प्रकाश डाला है। मैं गागर मे सागर भरनेकी कला नहीं जानता। मैं क्यों न आशा करूं कि मेरे पाठकोंमे आपकी विचार-सामग्रीके स्वतन्त्र अध्ययनकी आकाक्षा होगी।

कुशल ग्रन्थकार

प्रत्येक महापुरुषका सर्वाग्रिम या सर्वान्तिम लक्ष्य होता है ज्ञान-विकास। वह आत्माकी अन्तर-प्रेरणासे मिलकर चलता है, आचरणको साथ लिए चलता है, इसलिए उसका दूसरा नाम होता है आत्म-विकास। विकसित-व्यक्तियोंको अविकासकी स्थिति सह्य नहीं होती, इसलिए वे अपनी विकासोन्मुख आत्माके भाव दूसरोंमें उंडेलना चाहते हैं। इस सत्प्रेरणाको हजारों शास्त्र-ग्रन्थोंकी रचनाका श्रेय मिला है। 'बालानां बोधवृद्धये', 'शिष्यानुग्रहाय' आदि आदि प्रारम्भ-वाक्योंमें उक्त भावनाके स्फुट दर्शन मिलते हैं।

कविके लिए 'काव्यं यशसे' का क्षेत्र खुला है। किन्तु एक ग्रन्थकारके लिए यह श्लाघनीय नहीं होता। उसकी गति सिर्फ

'परहिताय' होनी चाहिए। आचार्यवरने इसी भावनासे कई ग्रन्थ रचे है। उनमे जैन-सिद्धान्त-दीपिका, भिक्षु-न्याय-कर्णिका, शैक्ष-शिक्षा-प्रकरण आदि उल्लेखनीय हैं। जैन-दर्शनके विद्यार्थीके लिए ये अपूर्व उपयोगी है। कलकत्ता विश्वविद्यालयके आशुतोष प्राध्यापक, संस्कृत-विभागके अध्यक्ष डा० सातकडि मुकर्जीने स्वयं मुझसे कई बार कहा—"खेद है कि 'जैन-सिद्धान्त-दीपिका जैसा उपयोगी ग्रन्थ अभी तक प्रकाशित नहीं हुआ।"

उक्त ग्रन्थोंका कलेवर मध्यम परिमाणका है। फिर भी उनमे अवश्य जाननेयोग्य तत्त्वोंका सुन्दर संकलन है। मुझे विश्वास है, ये कृतिया आपके कृतित्वकी अमर प्रतीक होंगी।

१—ये उद्‌गार उस समयके है, जबकि जैन-सिद्धान्त दीपिका प्रकाशित नहीं थी।

सफल प्रेरणा

आपकी वृत्तिया अपने तक ही सीमित नहीं रहतीं। उनका समूचे सघ पर प्रभाव पडता है। पुराने जमानेमे लोग कहते थे 'यथाराजा तथाप्रजा'। आजकी भाषामे कहू तो 'यथा नेता तथानुग।' जो वीत गई, उससे क्या। राजा रहे नहीं, तव 'जैसा राजा वैसी प्रजाका' का क्या अर्थ वने ? आजके आदमीको आज की भाषामे वोलना चाहिये। 'जैसा नेता वैसा अनुयायी' यह ठीक है। आपका नेतृत्व अपने अनुयायियों पर असर कैसे न करे ?

आपकी सक्रिय शिक्षासे प्रेरणा पा साधु-सघने भी साहित्य-निर्माणके पुण्य कार्यमे वडी तत्परतासे हाथ वढाया है। समयके परिवर्तनने प्राकृत, संस्कृत आदि प्राच्य भाषाओंका स्थान हिन्दी को दिया है। अव वह राष्ट्रभाषाके पद पर आसीन है।

जैन-विद्वानोने सदासे ही लोक-भाषामे कहा या लिखा है। भगवान् महावीरने लोक-भाषाके माध्यमसे ही अपना सन्देश जनताके कानों तक पहुचाया था। उसकी चर्चामे एक आचार्यने लिखा है :—

"बालस्त्रीमन्दमूर्खाणा, नृणा चारित्रकांक्षिणाम्।
अनुग्रहार्थं तत्त्वज्ञै, सिद्धान्त प्राकृत कृत ॥"

आपके नेतृत्वमे हिन्दी भाषामे जैन-साहित्य-निर्माणका महान् कार्य प्रस्तुत है। हमे आशा है, थोड़े वर्षोमे जैन-साहित्य हिन्दी संसारमे प्रतिष्ठापूर्ण स्थान पा लेगा। प्राच्य-साहित्य-निर्माण कार्यमे जैन-साधुओंका इतिहास बडा उज्ज्वल है। आपके नेतृत्व मे वह परम्परा स्मृतिकी वस्तु नहीं बनेगी।

प्रश्नोत्तर

तत्त्व-चर्चा आपकी सार्वजनिक चर्याका एक प्रमुख अङ्ग है। व्याख्यान, साधारण बातचीत और प्रश्नोत्तरके रूपमे वह चलती रहती है। प्रश्न करनेवालोंका ताता सा जुडा रहता है। 'विश्व-शान्ति-सन्देश' के बाहर आते ही वह प्रश्नोंकी भूमि बन गया। भारत और योरोपके विचारकों द्वारा इसके बारेमे बहुत कुछ पूछा गया। आपने उन सबका समाधान किया।

लन्दनसे जैन-विद्वान् हर्बर्ट वैरेनके प्रश्न आये। आपने उनको बडे मार्मिक ढंगसे समझाया। आपके प्रश्नोत्तरोंकी संक-लना की जाये तो एक वृहत्तर पुस्तक बन सकती है। इसलिए मैं इस विषयको अधिक लम्बा नहीं खींचूगा। सिर्फ आपके उत्तर देनेकी शैली और दो चार प्रसगोंको बताकर इससे क्षमा चाहूगा।

आप उत्तर देते समय आवेशमे नहीं आते और थोडे शब्दों में उत्तर देते हैं। ये दोनों बातें आपने अपने पूर्व-आचार्य श्री कालुगणीसे सीखी—ऐसा कई बार आप कहा करते हैं। उत्तर देते समय आवेशमे आनेवाला 'आपा' खो बैठता है। अधिक बोलनेवाला उलझ जाता है। इसलिए उत्तरदाताके लिए अनावेश और संक्षेप ये दोनों गुण आदरणीय हैं। प्रश्नकर्ता स्वतन्त्र होता है। वह कटु बनकर आये तो भी उसे मृदु बना देना, इसमें उत्तरदाताकी सफलता है।

प्रो० ए० एस० वी० पन्तने अपने एक लेखमें आपसे हुए प्रश्नोत्तरोंकी स्थितिका वर्णन करते हुए लिखा—

* आचार्य महाराज हमारी आलोचनाओसे उत्तेजित नही हुए। उन्होने पहले हमारे दृष्टिकोणको समझनेका एव बादमें उसका उत्तर देनेका प्रयास किया। यह एक ऐसा गुण है, जो देशके विरले ही धर्माचार्योमें मिलता है। उनमेंसे बहुतसे तो भावनाओके असहिष्णु है।

---

* The Acharya Maharaj was not upset by our criticisms He tried to understand our view point and then answer the same This is a rare quality to be found in the religions of the land. Many of them are intolerant of supposition They can brook of no argument But Sri Pujyaji, in all our discussions with him never talked disparagingly about other religions, but only maintained with telling arguments his own point of view"

(विवरण पत्रिका, २६ जुलाई, १९५१)
वर्ष १ सख्या ३ पृष्ठ ३

वे किसी भी युक्ति अथवा तर्कको सहन नही कर सकते। लेकिन श्री पूज्यजी महाराजने हमारे धार्मिक प्रसगमें कभी भी दूसरे मतके दोष नही निकाले और न अन्य धर्मके बारेमें निन्दात्मक बातें की, लेकिन तर्क एव युक्तिके साथ अपना दृष्टिकोण ही रक्खा।"

इस प्रकरणमे आपकी अपनी एक निजी विशेषता है। वह है प्रश्नकर्ताको पराजित करनेकी भावना न रखना। प्रश्नकर्ता कैसी भी भावना लेकर आये, उत्तरदाताको उसे हर हालतमे क्षमा करना चाहिए। उभयपक्षीय वितण्डा और जय-पराजयकी भावना से शत्रु-भाव प्रबल होता है। निष्प्रयोजन शत्रु बनाने तथा शत्रुता-पोषण-वृत्तिको बढ़ावा देनेका अर्थ क्या? उत्तरदाताका कर्त्तव्य है—समझसकनेवाले को समझाये, वितण्डा करनेवालेसे मौन रखखे, किन्तु वैमनस्य न बढ़ावे। आपकी इस प्रवृत्तिसे हजारों व्यक्ति आपकी ओर झुके हैं।

आचार्यश्री अपने प्रश्नकर्ताको जिस शीघ्रतासे सुलझानेका प्रयत्न करते हैं, उसमे आपकी स्पष्टता, आत्मनिष्ठा और निर्भीकता तैर आती है।

भारतके सर्वोच्च न्यायालयके मुख्य न्यायाधीश पी० डबल्यू स्पेंशने आपसे पूछा—क्या राजनीति और धर्म एक ही है?

आपने उत्तरमे कहा—नहीं।

स्पेंश—कैसे?

आचार्यश्री—राजनीति धर्मसापेक्ष है, किन्तु समूची राजनीति धर्म नहीं है।

स्पेंश—धर्मसे अन्याय मिटता है, राजनीतिसे भी, फिर इनमे अन्तर क्यों ?

आचार्यश्री—राजनीतिमे स्वार्थ रहता है, बल प्रयोग होता है। बल-प्रयोगसे अन्याय छुडवाना भी हिंसा है। यहींसे राजनीति और धर्म दो होते चले जाते हैं।

स्पेंश—विश्व-शान्ति कैसे हो सकती है? युद्ध कैसे मिट सकता है ?

आचार्यश्री—स्वार्थ, अनधिकारपूर्ण प्रभुत्व छोडनेसे दोनों हो सकते हैं। यह हो कैसे, आजका लालची मनुष्य अप-स्वार्थ तक छोडनेको तैयार नहीं है।

स्पेंश—आप सत्यकी मूर्ति है, फिर गवाही क्यों नहीं देते ?

आचार्यश्री—हमारे द्वारा किसी पक्षको भी कष्ट नहीं होना चाहिए।

लेडी स्पेंश—सासारिक उपकारको आप धर्मसे पृथक् कैसे बताते है ?

आचार्यश्री—जिससे आत्म-विकास न बने, केवल भौतिक लाभमात्र हो, उसको आत्म-धर्म नहीं माना जा सकता।

हंगरीके सुप्रसिद्ध विद्वान् तथा प्राच्य संस्कृतिविषयक उच्च-शिक्षा-कौन्सिलके प्रतिष्ठाता एवं सञ्चालक डा० फेलिक्स वाल्पी के विचित्र प्रश्नोंके उत्तर आनन्ददायक होनेके साथ-साथ ज्ञान-वर्धक भी हैं :—

फेलिक्स—क्या आत्मसाधनाके लिए केवल जैनसूत्रोका ज्ञान ही यथेष्ट है ?

आचार्यश्री—हा, यथेष्ट है, परन्तु व्यावहारिक ज्ञानकी भी उपेक्षा नहीं की जा सकती।

फेलिक्स—काम - वासना को जीतनेके क्रियात्मक उपाय क्या हैं ?

आचार्यश्री—काम-वासना पर विजय प्राप्त करनेके क्रियात्मक उपाय ये हैं —

(१) काम-वासना जनक बातें न करना।

(२) दृष्टि-संयम रखना।

(३) अधिक न खाना।

(४) मादक द्रव्य—शराब, नशीली वस्तुओ एवं उत्तेजक पदार्थोंका सेवन न करना।

(५) मनको स्वाध्याय, आदि सत्प्रवृत्तियो मे लगाये रखना।

(६) आत्मा और शरीरके भेदका चिन्तन करते रहना।

(७) योगका अभ्यास करना।

फेलिक्स—क्या साधु स्त्रीसंगसे दूर रह कर पूर्ण सन्तुष्ट हैं ?

आचार्यश्री—संयममें जो आनन्द है, वह स्त्री-ससर्गसे कभी प्राप्त नहीं हो सकता। [साधु अपने आदर्शोंपर चलते हुए पूर्ण प्रसन्न हैं।

फेलिक्स—क्या जैन-सम्प्रदायमें दम्पतिके लिए शील-पालन आवश्यक समझा जाता है ? क्या विवाह धार्मिक संस्कार माना जाता है ?

आचार्यश्री—यद्यपि गृहस्थके लिए पूर्ण ब्रह्मचर्यका पालन अनिवार्य नहीं है, फिर भी पर-स्त्रीसे पूर्ण बचाव और अपनी स्त्रीके साथ काम-सेवनकी मर्यादा स्थिर करना आवश्यक है। जैन-दृष्टिकोणसे विवाह धार्मिक संस्कार नहीं है।

इस प्रकार भारतके प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक डा० के० जी० रामाराव*, आस्ट्रियाके पत्रकार डा० हर्बर्ट टीसी, लन्दनके जैन विद्वान् हर्बर्ट वैटेन आदि विशेषज्ञोंके प्रश्नोंके उत्तर न पाकर जिज्ञासु पाठक अवश्य कुछ असन्तुष्ट होंगे, किन्तु इस झाकीमे मैं पूर्णता की आशा ही कब करा पाया हूं। ऊपरकी पंक्तियोंमे थोड़ेसे प्रश्नोत्तर ज्योंके त्यों रख दिये गये है। विचारक वर्ग स्वयं इनका मूल्य आक लेंगे।

* देखो तत्त्वचर्चा (आदर्श-साहित्य-सघ द्वारा प्रकाशित)

जन-सम्पर्क

आपके जीवनका यह एक रहस्यपूर्ण अध्याय है। इसको लेकर विरोधी क्षेत्रोंमे कटु, कटुतम आलोचनाएं और टीका-टिप्पणियां हुई हैं। न आपने उनका विशेष समाधान किया और न उन आलोचकोंने इसका तत्त्व छूनेका विशेष प्रयत्न किया। आपके सम्पर्कमें आनेवाले व्यक्ति शिक्षा, सत्ता, न्याय और विभिन्न पार्टियोंसे सम्बन्ध रखनेवाले हैं। सैकडों, हजारों व्यक्ति आये, दो चार पाच दिन सम्पर्कमे रहे, जो कुछ देखा, उसे उन्होंने लिखा अथवा कहा। कारण क्या है ? पता नहीं, कई व्यक्ति इससे झल्ला उठे। उन्होंने आचार्यश्री पर, श्रावक वर्ग पर और आनेवाले व्यक्तियो पर वडे-वडे आरोप लगाये—जैसे आचार्यजी को वड़प्पनकी भूख है, वे दूसरोके पाससे प्रमाण-पत्र लेना चाहते

है, श्रावक वर्गके पास धन बहुत है, वह अपने आचार्यजीकी प्रशंसा सुननेके लिए धनके बल पर टानलाता है, आनेवाले धनके लालचसे आते है, उन्हें खुश करनेके लिए अथवा सभ्यताके नाते दो-चार अच्छे शब्द कह देते है, आदि आदि।

आखिर इसका बीज क्या है? यह कार्य क्यों चला और चल रहा है? आप इसे किस दृष्टिसे देखते है? इस रहस्यपूर्ण मुद्दे पर मैं मेरी स्फुट धारण रखनेकी चेष्टा करूंगा।

आचार्यश्रीका नेतृत्व सम्हालनेके तुरन्त बादसे यह ध्यान रहा है कि हमें अपने पूर्वाचार्यों द्वारा विरासतके रूपमे जो संगठन और चैतन्य मिला है, उसका पूरा-पूरा उपयोग होना चाहिए। समय-समय पर इस भावनाको आप साधु-संघ तथा श्रावक-संघ के सामने व्यक्त करते रहे। आपने अनेकों बार श्रावकोंसे कहा

"तुम स्वार्थी मत बने रहो। तुम्हारे पास जो कुछ है, वह दूसरोंको बताओ, वे लेना चाहें तो दो। इसमे तुम्हारा हित है और उनका भी।"

इससे श्रावकोंको बल मिला। उन्होंने प्रचार-कार्यकी तालिका बनाई। उसमे एक कार्यक्रम यह भी रखा कि विशिष्ट व्यक्तियों से सम्पर्क-साधना और उन्हें आचार्यश्रीके सम्पर्कमें भी लाना। योजनाके अनुसार कार्य शुरू होगया। अकल्पित सफलता मिली। परिधिसे बाहर रहनेवालोंको आश्चर्यसे अधिक सन्देह होने लगा। उनका दृष्टिबिन्दु यहीं केन्द्रित रहा कि यह सब प्रलोभनके सहारे हो रहा है, नहीं तो यकायक यह परिवर्तन कैसे आता।

यह ठीक है, आप विशिष्ट व्यक्तियों के सम्पर्क को मर्यादा के प्रतिकूल नहीं मानते हैं। हिंसक शक्तियोंके प्रतिरोधमे अहिंसक शक्तिया मिलजुलकर कार्य करें, यह आपकी सार्वदिक इच्छा रहती है। अहिंसाका प्रभाव बढे, इसी भावनासे आप किसीको समझाते है, किसीसे विचार-विनिमय करते है और किसीको उसका सार्वभौम प्रचार करनेकी प्रेरणा देते है।

आप पैदल विहार करते है। इसलिए आपको सुदूर-क्षेत्रोंतक पहुचनेमे कठिनाई होती है। दूसरे लोग सवारीपर बैठते है। वे शीघ्र आ-जा सकते है। इसलिए श्रावक लोग सारी परिस्थिति बता उन्हें निमन्त्रण देते है। अगर वे निमन्त्रण स्वीकार करें तो उन्हें आचार्यश्रीके सम्पर्कमे ले आते हैं। इसमे आपत्ति जैसी कोई बात लगती नहीं। प्रलोभन देकर लाते हैं, चापलूसी करते हैं, प्रमाणपत्र लिखवाते है आदि आदि बातें निर्मूल है। ये हिंसा-भावनासे गढी गई है। आचार्यश्री साधन-शुद्धिपर हमेशा बल देते हैं। श्रावक लोग आगन्तुक व्यक्तियोका आतिथ्य करते है, उसे कोई प्रलोभन कहे तो भले ही कहे।

कुछ ऐसा लगता है कि हिंसक शक्तियोकी तरह अहिंसक शक्तिया मिलजुलकर कार्य नहीं कर सकतीं। अहिंसामे प्रेम है, बन्धुता है, फिर भी एकत्व क्यो नहीं, यह एक गुत्थी है। आचार्यश्रीने २३ जुलाई ५१ को दिल्लीमे एक प्रवचनमे कहा —

"क्या कारण है कि चार चोरोंका तो एक सगठन हो सकता है पर चार भद्र पुरुप चतुष्कोणके चार बिन्दुओंकी तरह अलग-

अलग ही रहते हैं। बुराईकी ताकतोंसे लोहा लेनेके लिए यह आवश्यक है कि भले आदमियोंका भी सुदृढ संगठन हो।"

राष्ट्रके अन्य अहिंसाप्रेमी व्यक्ति भी इसकी आवश्यकता अनुभव करते हैं। आचार्यश्रीके साथ वार्तालाप करते हुए राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसादने कहा—"यह अच्छा हो कि सर्वोदय समाज और अणुव्रती संघ मिलजुलकर कार्य करें।" आपने इनकी इस भावनाका स्वागत करते हुए कहा—"अहिंसक समाजोंके लिए यह बहुत आवश्यक है। कारणकि जबतक हम अहिंसाके लिए एक शक्तिशाली जनमत तैयार नहीं करलेंगे, तबतक अहिंसाके द्वारा हिंसक शक्तियोंको प्रभावित नही करसकेंगें।"

आपके सम्पर्कमें आनेवाले व्यक्तियोंकी संख्या-सूची देकर मैं पुस्तकके पृष्ठ बढाना नहीं चाहता। मैं सिर्फ इतनाही बताऊंगा कि जो व्यक्ति आपके निकट आये, उनमें निन्यानवे प्रतिशत आपकी कठोर साधना, अगाध पाण्डित्य, सर्वतोमुखी प्रतिभा, अहिंसा-प्रसारकी तीव्र भावना और सहृदयतासे अत्यन्त प्रभावित हुए हैं।

लन्दनके ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालयके संस्कृत-अध्यापक डा० एफ० डबल्यू-टमास एम० ए० पी० एच०डी, सी०आई० ई० जैनधर्मकी जानकारीके लिए आचार्यश्रीकी सेवामें आये। कई दिन रहे। जाते समय उन्होंने अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा :—

* "बीदासरमें तेरापन्थी समाजसे मिलकर, आचार्य महाराजके

---

* It has been a great satisfaction to me to be able

दर्शनका सौभाग्य लाभ कर, इतने विद्वान् व विनीत साधु साध्वियोसे मिलकर मुझे अत्यन्त प्रसन्नता हुई। साधु व साध्वियोकी धर्म पर दृढ आस्था, सत्य निष्ठा, गृहस्थोका भक्तिभाव विसवाद रहित है। तेरापन्थी गण पर जैन-धर्मके त्याग, वैराग्यका सम्पूर्ण पालक होनेके कारण, सासारिक कार्योमे सम्पूर्ण निर्लिप्त रहनेके कारण, दूसरोंके प्रति समवेदनाराहित्यके आक्षेपका मौका मिलता है। परन्तु उनके अहिंसाके महान तत्त्वके स्वरूपसे और खासकर उनकी कार्यकारी दयालता व मैत्री-भावमे ही वह आक्षेप सवथा असत्य हो जाता है।"-

आचार्यश्रीका व्यक्तित्व एक महान रश्मिपुञ्ज है। उसमे लाखों व्यक्तियोंको आलोक देनेकी सामर्थ्य है। जैसा कि भारत मे नैतिक और सामाजिक स्वास्थ्य-संघकी प्रधान संघटनकर्त्री कुमारी मेलिसेंट सेफेलने सरदारशहरमें भाषण करते हुए जनताको सम्बोधित कर कहा :—

---

to pay a visit to the Terapanthi Community in Bidasar, to have the honour of Darsan of the Acharya Maharaj and to meet so many learned and devout Sadhus and Sadhwis . The conviction and sincerity of the Sadhus and Sadhwis and the devotion of the laity are beyond question The strict adherance of the Terapanthis to Jain principals of asceticism and abstention from mixing in worldly affairs gives occasion for criticism on the ground of unfeelingness which however are belied by the very nature of their great principale of Ahimsa and by their practical kindness and friendliness "

"एक चिरागसे हजारो चिराग जलाये जा सकते है। आचार्यश्रीके उपदेश तथा उदाहरणरूपी जगमगाते चिरागसे अनेक पवित्र जीवन प्रकाश प्राप्त कर सकते है। आपका शान्ति और बन्धुत्वका आदर्श सम्पूर्ण भारतवर्षमें फैले।"

शान्तिका प्रसार आपका प्रथम या चरम लक्ष्य है। किन्तु उसके लिए साधना जरूरी है, ऐसा आपका विश्वास है। शान्ति के अनुरूप आदर्श और व्यवहार बनाये बिना वह मिल नहीं सकती। इसलिए उच्च भूमिका पर फलित होनेवाली आपकी साधना दूसरोंके लिए स्वयंसिद्ध आकर्षण है। एक बार भी आपकी साधनापूर्ण दशाका अवलोकन करनेवाला अपने आपको धन्य मानता है।

भारतके सर्वोच्च न्यायालयके मुख्य न्यायाधीश सर पेट्रिक स्पेंश ने आचार्यश्री से हुए अपने सम्पर्कका उल्लेख करते हुए कहा :—

"मैंने कभी कल्पना भी नही की थी कि मेरे जीवनमें ऐसा सुन्दर सप्ताह गुजरेगा।"

उन्होंने विदा होनेके पूर्व बड़े आग्रहके साथ आचार्यश्री से मंगल-पाठ सुना। इसके पूर्व उन्होंने एक वक्तव्य देते हुए कहा :—

* "ये साधु-साध्वियां आजके कष्टपूर्ण समयमें संसारकी भलाई और शान्तिके लिए कार्य कर रहे हैं, यह देख मुझे बड़ा सन्तोष है।

* "I am profoundly satisfied that in the present troublous times these Sadhus and Sadhwis are working for the good and peace of the world ... . The example set up by His Holiness, His Sadhus and Sadhvis is one

........आचार्यश्री और उनके साधु-साध्वी जो उदाहरण प्रस्तुत करते हैं, यदि लोग उनका अनुकरण करें तो ससारकी सब कठिनाइया दूर हो जाय।

सम्भवत मैं १५ मासके अन्दर-अन्दर भारतसे प्रस्थान करूगा। ऐसा लगता है कि इस देशमें बड़े-बडे परिवर्तन आनेवाले हैं। यदि लोग शान्तिसे और मेल जोलसे रहते हुए गुरु महाराजके आदर्शो पर चलेंगे तो मुझे पूरा विश्वास है कि उनका भविष्य उज्ज्वल होगा।

मुझे अपनी यह यात्रा लम्बे समय तक याद रहेगी। गुरु महाराज जो काम कर रहे है, उसमें और सघके उच्च नैतिक आदर्शोमें मुझे सदा अनुराग रहेगा।"

आपमें श्रद्धा और बुद्धिका सुन्दर समन्वय है। अपने लिए जहां श्रद्धाका प्राधान्य है, वहां दूसरोंके लिए बुद्धिका। सिर्फ

---

which, if followed by the people, would put and end to all the troubles of the world

Probably I shall have to leave India within the next 15 months and great changes are in store for this country I profoundly believe in the future of this country if the people learn lo live in peace harmony and follow the ideals which Guru Maharaj stands for

I shall long remember my visit and shall always be interested in the work being done by Guru Maharaj and in the high moral standard of the sect."

(विवरण-पत्रिका, अप्रैल १९४३, पृष्ट ११४)

वर्ष ८ अक ४

दूसरों पर प्रभाव डालनेके लिए बुद्धि नहीं होनी चाहिए। किन्तु यह सही है कि नुकीली बुद्धिके बिना प्रभाव पडता भी नहीं। आप अपने प्रति अटल है। आत्म-विश्वास अटल है। फिर भी आप अपनेको युक्तिसे दूर नहीं रखते।

युक्तप्रान्तीय कांग्रेसके उपाध्यक्ष, केन्द्रिय विधान-परिषद्के सदस्य अलगूराय शास्त्रीने आपके सम्पर्ककी चर्चा करते हुए लिखा है :—

"मैंने तेरापन्थी साधुओंके अनेक कलापूर्ण काम देखे। जैन दर्शन के विषयमें मैंने पहलेसे ही कुछ सुन रक्खा था और अब करीब २० वर्षसे जैन-धर्मकी गम्भीरतासे पूर्ण प्रभावित हू। कितना बडा पांडित्य हमें यहा देखनेको मिला, इसका वर्णन करना असभव सा है।

मै एक वैज्ञानिक समाजको माननेवाला व्यक्ति हू, प्रत्येक बातको वैज्ञानिक ढगसे देखता हू। आचार्यजीकी आत्मा कितनी ऊची है, वे व्यवहारकी बात करके भी परमार्थकी ओर जाते है। अपने आदर्श से नीचे बिल्कुल नही उतरते, इसका मैंने पूर्ण अनुभव किया। भारत एक धर्मपरायण देश है, इसमें ऐसे उपदेशोंकी आवश्यकता है। इन उपदेशोंके द्वारा राष्ट्रको आसानीसे ऊचा उठाया जा सकता है।"

प्रो० सुशीलचन्द्र गुहा एम० ए० बी० एल० ने 'मेरी राजगढ यात्रा' शीर्षक निबन्धमें लिखा है :—

* "सूक्ष्मतम दार्शनिक प्रश्नोंको विभिन्न रूपसे समझानेकी एव

---

* His Holiness .... has wonderfnl power of analysing the subtlest philosophical problems and of

विभिन्न दार्शनिक विचारधारा सम्बन्धी विचारोंका समुचित समाधान करनेकी आपकी शक्ति अद्भुत है। जब मैंने पूज्यजी महाराजका ध्यान बौद्ध-विचारधारा—आत्मा जैसी कोई वस्तु नही और मनसे परे कुछ नही, की ओर आकर्षित किया तो उन्होंने तुरन्त प्रत्युत्तर दिया—

---

setting at rest the controversies in phylosophical speculation When I drew the attention of His Holiness to the Buddist conception that nothing like the Soul and nothing beyond the Mind could be found in the human system, His Holiness very sharply replied that there was no conflict there, as the mind which was the thinking apparatus in the human system, might be taken as identical with the soul, a quality of which was consciousness When His Holiness was confronted with the vedantic theory of the unity of the pramatma, His Holiness observed that when the liberated souls shone out brightly side by side like as many luminous bodies a person looking at the adjacent luminous bodies from a great distance might not notice their multiplicity and even, on the contrary, entertain and idea of their unity, which was only illusory and not real, when faced with possibility of the existence of the Bheda-Buddhi, that is the discriminating knowledge that X is X and not Y or Z His Holiness observed that as the liberated souls were similar in quality, there could not be any such Bheda-Bhuddhi in the liberated souls In addition to His scholarship and loftiness of moral and spritual character, His Holiness possesses splendid eloquence in his mother tongue He daily addresses hundreds of his disciples,

'इसमें कोई विशेष बात नही, क्योकि मनका जोकि मानवीय व्यवस्थामें विचार-शक्ति उत्पन्न करता है, आत्मा, जिसका गुण चेतनता है, के साथ अभिन्नरूपसे सम्बन्ध है।' जब पूज्यजी महाराजके सामने एकेश्वरवादका वेदान्तिक सिद्धान्त रखा गया तो उन्होने बतलाया कि जिस प्रकार चमकते हुए पदार्थोंका समूह पास-पास होनेसे दूरसे देखनेमें एक मालूम होता है परन्तु वह वास्तविकता नही, भ्रम है। उसी प्रकार मूल आत्माए प्रकाशयुक्त होनेसे चमकते पदार्थोंके समूहकी तरह देखनेमें एक मालूम पडती है, पर वास्तवमें ऐसा नही। जब उनको मोक्ष-प्राप्तिके बाद जीवनकी एव भेद-बुद्धि—उचितानुचित

---

including the Sadhus Sadhvis and the laymen in an impressive way on the main tenets of Jainism Besides, His Holiness has wonderful memory I found His Holiness reciting and explaining the Ramayana every night, before a vast gathering of men and women who musthave undoubtedly gained much ethical and spritual knowledge during the Chaturmasya of His Holiness

Although I had a mind to stay longer with His Holiness, I had to come away hurriedly after a week when reports of communal troubles reached me from Bengal When I took leave of His Holiness I mentally uttered "Gachchhami Punardarsanaya" (I am going to unite again). I have no doubt that this is the attitude of every visitor of His Holiness.

(विवरण-पत्रिका, ९ अगस्त, १९५१)

वर्ष १, सख्या ५ पृष्ठ ५

जाननेका ज्ञान कि 'क' क है ग या घ नही, की सम्भावनाके विषयमें पूछा गया तो उन्होने उत्तर दिया कि मुक्त आत्माए गुणमें एक समान है, अत ऐसी भेद-बुद्धि उनमें नही रह सकती। आचार्यश्रीमें विद्वता, नैतिक एव आध्यात्मिक विचार-शक्ति तथा चारित्रकी उच्चताके साथ-साथ अपनी मातृभाषामें भाषण देनेकी प्रखर शक्ति है। वे हमेशा सैकडो मनुष्योके बीच, जिनमें साधु-साध्विया, श्रावक-श्राविकाए एव अन्य भी होते है, जैन-धर्मके मुख्य तत्त्वो पर प्रभावोत्पादक भाषण करते है। इसके अतिरिक्त उनकी स्मरण-शक्ति भी अद्भुत है। मैंने पूज्यजी महाराजको चातुर्मासमें रात्रिके समय विशाल जनसमूहमें—जोकि नि सन्देहरूपसे नैतिक एव आध्यात्मिक ज्ञानको प्राप्त करते है, रामायणका कण्ठस्थ पाठ करते सुना है।

यद्यपि मेरा विचार पूज्यजी महाराजके साथ कुछ दिन और रहने का था पर बगालसे साम्प्रदायिक अशान्तिके समाचार आनेसे एक सप्ताह बाद शीघ्र ही जाना पडा। जानेके समय मैंने मनमें सोचा—मैं आपके पुन. दर्शनोके लिए जा रहा हू। मुझे इसमें सन्देह नही कि आचार्यश्रीके दर्शन करनेवालो—सभी सज्जनोके मनमे ऐसी ही भावना रहती है।'

धर्मक्षेत्रमे सम्प्रदायवादकी भीषण आग जल रही है। वह इसीलिए कि धार्मिक व्यक्ति समभावी नहीं रहे। समभाव जीवन की सार्वभौम सत्ता है। वह विना कुछ किये दूसरोंको आत्मसात् कर लेती है। किन्तु जात-पात आदिके छोटे-छोटे बन्धनोमे बध कर आदमी अपनी असीमताको खो बैठता है।

विषमता हलाहल जहर है। उसकी एक रेखा कला, सौन्दर्य और साधनाको निर्जीव बना देती है। वह कला, वह सौन्दर्य और वह साधना मौलिक होती है, जिसका उत्स होत है सम-भाव। आप योगीराज है। 'समत्वं योग उच्चते' की योग-पद्धतिसे आपका जीवन छलाछल भरा है।

भारतीय संस्कृति और इतिहासके प्रसिद्ध विद्वान् डा० कालीदास नाग आचार्यश्रीके दर्शन कर जो जान सके, उसे उन्हींके शब्दों* में देखिये:—

"आचार्यश्री रास्तेके एक ओर वेदीपर बैठके धर्मोपदेश कर रहे थे और कितने ही श्रोता उनकी वाणी सुननेके लिए आये थे। उनमें केवल सम्प्रदायके लोग ही नही बल्कि सब धर्मोंके लोग थे। मुसलमान भी थे। साधुकी वाणी सबके लिए है। साधु-सन्त यही करते आये है।

उनकी साधना-प्रणाली और कला-कारीगरी देखकर भी मै मुग्ध हुआ था। केवल सत्यकी ही नही बल्कि सौन्दर्यकी साधना भी साथ साथ चल रही है। मैने वहा राजस्थानी भाषामें कविताए भी सुनी उनसे भी मुझे बहुत आनन्द हुआ और मै चाहता हू कि आप राजस्थानी संस्कृतिका परिचय इधर बगालमें भी दें।"

अन्तर-दृष्टिवाले व्यक्तियोंका आकर्षणकेन्द्र बाहरी वस्तुजात नहीं होता। उन्हें ललचानेवाली कोई वस्तु होती है तो वह होती है सदाचारपूर्ण साधना। आचार्यवर इसके महान् धनी है।

---

* जैन भारती वर्ष ११ अक १, जनवरी १९५०

प्रो० तान-युन-शान, अध्यक्ष चीन भवन, शान्तिनिकेतनने आचार्यश्रीके दर्शन कर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा —

'मै जयपुरमें अबसे ५ वर्ष पूर्व भी आया था और अब दूसरी बार श्री जैन श्वेताम्बर तेरापन्थके आचार्यश्रीके दर्शनार्थ आया हू। मुझे यहा की सुन्दर सडको, चौडे रास्ता व खूबसूरत इमारतान आकर्षित नही किया, वल्कि आचार्यश्री तुलसीगणीके सदाचरणयुक्त महान् कार्योने अत्यन्त प्रभावित किया।

श्री जैन श्वेताम्बर तेरापन्थ सम्प्रदायके साधु बडी कठिन तपस्या का जीवन बिताते है। उनका जीवन परम पवित्र और सरल है। जहा तक मै जानता हू, मैंने किसी भी धर्मके अनुयायियोको इतनी कठिन प्रतिज्ञाओका पालन करते नही देखा। इस सम्प्रदायके साधु-साध्वो कला कार्यमें भी स्तुत्य है। भिक्षापात्र, हस्तलिखित धार्मिक ग्रन्थ, रजाहरण आदि कलामय वस्तुओको देखकर व्यवसायी कलाकारो को भी नत-मस्तक' होना पडता है।"

यहा (जयपुर) से जानेके कुछ समय वाद प्रोफेसर तानने शान्तिवादी सम्मेलनके सदस्योंको टी-पार्टी दी। तब वार्तालाप के क्रममे उन्होंने बताया —

हमारे यहा चार प्रकारके पुरुष माने गये है —

प्रथम—मनसे भी शुद्ध और शरीरसे भी शुद्ध।

द्वितीय—मनसे शुद्ध, शरीरसे अशुद्ध।

तृतीय—मनसे अशुद्ध और शरीरसे शुद्ध।

चतुर्थ—मनसे अशुद्ध और शरीरसे भी अशुद्ध।

"हमने जयपुरमे प्रथम श्रेणीके पुरुषोको देखा।"

आचार्यवर एक ऐसे धर्म-शासनके नेता है, जो समताका पूर्ण प्रतीक है। दो शताब्दीसे एकरूपमे चलनेवाली इस साम्य-पूर्ण पद्धतिका अध्ययन कर कोई भी समताप्रेमी प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता।

सुप्रसिद्ध समाजवादी नेता जयप्रकाशनारायणने तेरापन्थ संस्थाके मूलभूत सिद्धान्तों और साधुओंकी सर्वतः स्वावलम्बी जीवन-प्रणालीसे परिचित होकर कहा—

"एकके लिए सब और सबके लिए एकका सिद्धान्त तो समाजवाद का ही सिद्धान्त है। तेरापन्थी साधु-सस्थाका सगठन बहुत ही कठिन समाजवादी सिद्धान्तोके आधार पर है। हिन्दू और जैन-धर्ममें जो अन्यान्य सस्थाए है, उनके बडे-बडे मठ और असख्य धन-वैभव है। उनकी तुलनामें यह सस्था बहुत ही उच्चकोटिकी है। परन्तु हम साधु-सस्थाके उत्कृष्ट सिद्धान्तोको गार्हस्थ्य जीवनमें भी लागू करना चाहते है। न्याय और समताके आधार पर हमें 'बहुजनहिताय' समाज व्यवस्था करनी है और इस कार्यमें हमें आशा है कि आचार्यश्रीका आशीर्वाद हमारे साथ रहेगा।"

आचायवर 'एकोऽहं बहु स्याम्' की कोटिकी आत्मा है। विविध विचार और भावनाके लोग आपको विविध रूपमे पाकर एक महान् शक्तिकी कल्पना किये बिना नहीं रह सकते।

कलकत्ता विश्वविद्यालयके आशुतोष प्राध्यापक, संस्कृत विभागाध्यक्ष डा० सातकडि मुकर्जी एम० ए० पी० एच-डी० ने

आचार्यवरकी तेज-शक्तिका आलोकनकर कहा —

* "आत्म-नियन्त्रणसे जो तेज, महत्ता और शक्ति प्राप्त होती है, उसके महाराज श्री तुलसीरामजी स्वामी एक ज्वलन्त उदाहरण है। शास्त्रोका एक छात्र होनेके नाते मै उन सन्तोके, जिन्होने कषाय-विजय द्वारा लोक विजय प्राप्त किया है, जीवन-वृत्तोसे परिचित हूँ। पर दुर्भाग्यवश आध्यात्मिक तपश्चर्याओ तथा उनकी शक्तियोसे प्रत्यक्षरूप में परिचित नही था। शास्त्रीय विषयोंसे अपने परिचयके कारण ही मै श्री गुरुमहाराजके व्यक्तित्वमें परिलक्षित आध्यात्मिक शक्तिका पता लगानेमें समर्थ हुआ क्योकि शास्त्रोमें उन आध्यात्मिक कारणोंके पर्याप्त उल्लेख है। उनकी उपस्थितिमें हमलोगोकी अहकारयुक्त

---

* His Holiness Shri Tulsiramji Swami is such a concrete illustration of the splendour and majesty and power that self-mastery is said to achieve As a student of the Shastras, I am acquainted with the descriptions of the lives of saints who have conquered the world by conquering their lower selves But unfortunately I have no direct acquaintance with spritual exercises and their efficacy But my acquaintance with the contents of Shastras enables me to trace the spritual powers observed in the person of the Guru Maharaj to spritual causes of which there is ample record in the Shastras In his presence our eqoistic impulses, our vanity our pettinesses our jealousies, automatically subside I have felt the spritual contagion that he spreads over peoyle who come into his vicinity His radiant smile at once wins the

प्रवृत्तिया, अभिमान, लघुता और दोपदर्शिता आपसे आप दब जाती है। उनके समीप जो आते है, उनपर उनके इन आध्यात्मिक भावो का विस्तार मैंने अनुभव किया हूं। उनकी हास्ययुक्त मुस्कराहट कठिन हृदय सासारिक मनुष्यके हृदयपर तत्काल विजय पा जाती है। विद्वानों तथा विद्वत्ताका पेशा अपनाये हुए व्यक्तियोकी, जो अपनी विद्या वुद्धिका अत्यधिक गव किया करते है, कमजोरियोसे मुक्त मै अपनेको नही मानता। पर मैंने उनकी उपस्थितिमे पाया कि यह कमजोरी दबगई तथा मैंने अपनेको उनके सम्मुख एक शिशुके रूपम अनुभव किया। इसमे कोई आश्चर्य नही कि उस महात्माके प्रति हजारो व्यक्ति अपनी श्रद्धा-भक्ति दिखलाते तथा अपनी श्रद्धाञ्जलि अपित करते है। मुझे स्वत: यह अनुभव होने लगा कि उनकी पैनी

---

heart even of a hard hearted worldly man I do not claim immunity from the goneral weakness of scholars and men of learned profession who think much of their knowledge and wisdom But I felt in his presence that this weakness subsided and I felt like a child before him No wonder that thousands of people do their reverence and pay their homage to the saint I was made to feel that his penetrating vision enters into the innermost recesses of our mind But he has superabundant tolerance and forgiveness for our failings, and our good instincts are roused to activity by his mere presence So me how the impression has come over to my mind that he is a redeemer of carring humanity

Uufortunately my Association with His Holiness has been for a short spell and the multitude of visitors

दृष्टि हम लोगोंके मनके अन्तस्तलमें प्रवेश कर जाती है। पर हमलोगों की असफलताओंके प्रति उनकी अत्यधिक सहिष्णुता तथा क्षमाशीलता है और उपस्थितिमात्रसे ही शुद्ध प्रवृत्तियां क्रियाशील हो जाती है। मेरे मनपर यह प्रभाव पड़ा है कि वे भ्रान्त मानवताके मुक्तिदाता है।

दुर्भाग्यवश श्रीचरणोंसे मेरा सत्संग बहुत कम समय तक रहा तथा दर्शनार्थियोंकी अपार भीड़ और उनके व्यस्त दैनिक कार्यक्रमके कारण मुझे उनसे कुछ पाठ पढ़नेका अवसर नहीं मिल सका, पर उनके कुछ सन्त शिष्योंसे कुछ शास्त्र-चर्चाका अवसर मिला और इसीसे शास्त्रोंपर उनके अद्भुत अधिकारका अनुभव प्राप्त करना मेरे लिए सम्भव हो सका।"

चीनमें भारतीय राजदूत सरदार के० एम० पन्निकर, डा० अमरेश्वर ठाकुर, प्रो० दुर्गामोहन भट्टाचार्य संसदके सदस्य मिहिरचन्द्र चट्टोपाध्याय आदि बहुतसे भारतीय और अनेकों

---

and the fully crammed programme of his daily activities did not afford scope for taking lessons from him But I had the privilege of discoursing with some of his monk disciples and this made it possible for me to realise their stupendous mastery over the Shastras'

Spiritual Renaissance in Rajasthan and His Holiness Shri 1008 Shri Tulsiramji Swami the 9th Pontiff of the Jain Swetambar Terapanthi Community Page 3—4,

विदेशी दार्शनिक, विद्वान् तथा राजदूत आपके प्रति अत्यन्त श्रद्धालु है। डा० अमरेश्वर ठाकुरने 'तेरापन्थी साधु' शीर्षक एक पुस्तिका लिखी है, जिसमें तेरापन्थी संघका संक्षेपमे यथार्थ परिचय कराया है।

क्रान्तिकी चिनगारियाँ

धार्मिक क्षेत्रमे आचार्यश्रीने अमर क्रान्ति की है। समय-समयपर तीर्थंकर और बडे-वड़े आचार्य जिस लौ को जलाते आये है, उसीमे आपने भारी चैतन्य उंडेला है। स्वार्थ-पोषक लोग अपनी स्वार्थ-पूर्तिके लिए 'धर्म खतरेमे' का नारा लगाते है। आप इसे सहन नहीं कर सके। आपने कहा —

"यह क्या ? धर्म खतरेमे ? स्वार्थ खतरेमे हो सकता है। धर्म आत्माकी वस्तु है, उसको किस वातका खतरा ?"

आपने अपनी अनुभूति व्यक्त करनेके लिए एक कविता लिखी, जिसका शीर्षक रखा 'अमर रहेगा धर्म हमारा'। इसका जनतापर मनोवैज्ञानिक असर हुआ। लाखों जैन, जैनेतर, जो 'धर्म खतरेमे' की आवाज सुनते-सुनते भ्रान्त हो रहे थे, जाग

उठे धर्मके प्रति दृढ श्रद्धालु बन गये। 'अमर रहेगा धर्म हमारा' की आवाज बुलन्द हो उठी।

तेरापन्थके प्रथम आचार्य श्री भिक्षुगणीने धार्मिकोंको यह चेतावनी दी कि यदि धर्म हिंसा और परिग्रहका अखाडा बना रहा, उसके नामपर बड़े-बड़े मकान और पूजी एकत्र की गई, धनिक-निर्धनका भेद चलता रहा तो अवश्य ही उसके शिरपर एक दिन खतरेकी घण्टी बजेगी।

भगवान् महावीरकी वाणीका प्रतिबिम्ब ले भिक्षु स्वामीसे जो किरणें फैलीं, उनका आचार्यश्रीने महान् उज्जीवन किया।

लोग जब कहते है कि आज वैज्ञानिक-समाजकी धर्म पर आस्था नहीं है, तब आप इस तथ्यको स्वीकार नहीं करते। आपकी धारणा है कि इसमे वैज्ञानिक समाजका दोष नहीं है। यह सब धार्मिकोंने धर्मके नामपर जो खिलवाड की, उसका परिणाम है। धर्म सबके हितकी वस्तु है। उसपर किसीको आपत्ति नहीं हो सकती। किन्तु अहिंसा और सत्य जिसका स्वरूप है, अपरिग्रह जिसकी जड है, वह धर्म हिंसा, झूठ और परिग्रहका निकेतन बन जाय, तब उसे लोग कैसे अपनायें? कैसे उससे सुख-शान्तिकी आशा रखें।

धर्मकी जो विडम्बना हो रही है, उसे देखकर आपके हृदयमे बडी भारी वेदना होती है। मथुराके टाउन-हालमे प्रवचन करते हुए आपने कहा :—

"मुझे इस बातका खेद है कि लोगोंने धर्मको जातिके रूपमे

वदल डाला। धार्मिकोंके आडम्बर, कलह, शोपण, स्वार्थपरता, संकीर्णता, जाति-अभिमान आदिके बारेमे जब म सोचता हू, तब हृदय गद्गद् हो जाता है।"

"मैं ऐसे धर्मकी साधनाके लिए जनताको प्रेरित नहीं करता। मैं आप लोगोसे वैसे धमको जीवनमे उतारनेका अनुरोध करूंगा, जो इन झंझटोंसे परे हो, विश्वबन्धुत्वका प्रतीक हो।"

आपकी धारणामे धर्मके सच्चे अधिकारी वे हैं, जो त्यागी और संयमी है। आज वहुलाशमे धमकी वागडोर पूजीपतियों के हाथमे है इसलिए उसपरसे जन-साधारणका विश्वास उठ गया है। धर्मके लिए पूजीका कोई उपयोग नहीं है।

आपने गत कई वर्षोसे पिछडी जातियोकी आचार-शुद्धिपर विशेप ध्यान दिया। भगी-वस्तियोंमे साधुओको भेज कर व्याख्यान करवाये। अनेकों वार आपने स्वयं उनके वीच व्याख्यान किये। उनमे वडी श्रद्धा जाग उठी। आपने उनसे कहा —

"आपमे जो स्वयको हीन समझनेकी भावना घर कर गई, यही आपके लिए अभिशाप है। एक मनुष्य दूसरे मनुष्यके लिए अस्पृश्य या घृणाका पात्र माना जाये, वहाँ मानवताका नाश है। आप अपनी आदतोंको वदलें। मद्य, मास आदि वुरी वृत्तियों को छोड दें। जीवनमें सात्त्विकता लायें। फिर आपको पावन वृत्तियोंको कोई भी पतित या दलित कहनेका दुस्साहस नहीं करेगा।"

आचार्यश्रीके दृष्टिकोणको हजारों हरिजनोंने अपनाया। मद्य, मांस, तम्बाकू आदि अनेकों कुव्यसन त्याग दिये। कई स्थिति-पालकोंको यह बहुत अखरा। वे आचार्यश्रीको दलित जातिके बीच देखना पसन्द नहीं करते, किन्तु आचार्यश्रीने इसे अस्थान समझा। आप इसे बार-बार स्पष्ट करते रहे :—

"हमारा प्रवचन सबके लिए है। जो कोई सुनना चाहे उसे रोकनेका किसीको अधिकार नहीं है।"

आप यह भी स्पष्ट करते रहे :—

"हमारा जो कोई प्रयत्न होता है, वह सिर्फ अहिंसा और सदाचारकी वृद्धिके लिए होता है। हमे कोई सामाजिक या राज-नैतिक स्वार्थ नहीं साधना है। न हमे चुनाव लडना है और न मत एकत्र करने है। हम इन सब झंझटोंसे परे है।"

आचार्यश्री के इस सफल प्रयोगसे लाखों लोगोंको मानव-जातिकी एकताका भान होने लगा है, यह उनका सही मार्गकी ओर एक कदम है।

"व्यक्ति-व्यक्ति में धर्म समाया,
जाति-पातिका भेद मिटाया।
निर्धन धनिक न अन्तर पाया,
जिसने धारा जन्म सुधारा।।
अमर रहेगा धर्म हमारा।"

आपके इस पद्यकी धार्मिक क्षेत्रोंमे बडी गूंज है। आशा है कि भविष्यमे यह विशुद्ध धर्मका व्याख्या-मन्त्र होगा।

आज जिसकी चर्चा है

आचार्य श्री तुलसी एक महान् धर्माचार्य हैं। सैद्धान्तिक दृष्टिसे भले ही हमलोग आपको जैनाचार्य कहें, व्यवहारकी भूमिकामे आप सिर्फ धर्माचार्यके रूपमे सामने आये हैं। धर्म का उन्नयन आपके जीवनकी महान् साधना है। अहिंसाके व्यापक प्रचारका अदम्य उत्साह आपकी रग-रगमें रक्तकी भाति संचारित होता रहता है। अणुव्रतीसंघकी स्थापना इसीका परिणाम समझिये। यह एक असाम्प्रदायिक धमसंस्था है, जिसका एकमात्र उद्देश्य है जीवन-निर्माण, चरित्र-विकास। धर्म-संकीर्ण विश्वके लिए यह एक सरल पथ है। इसकी आत्मा अहिंसा है किन्तु स्वरूप क्रान्तिकारी है और यह सही है कि इसी प्रवृत्तिके कारण यह सहसा लोगोको अपनी ओर खींचनेमे सफल हुआ।

जैसा कि हिन्दीके प्रमुख पत्रकार सत्यदेव विद्यालंकारने लिखा है :—

"अणुव्रतीसघ एक सस्था, सगठन, आन्दोलन और योजना है, जिसके साथ आजके लोकाचारको देखते हुए 'क्रान्तिकारी' विशेषण बिना किसी सकोच या सन्देहके लगाया जा सकता है। कमसे कम मेरा आकर्षण तो उसके इस क्रान्तिकारी स्वरूपके ही कारण हुआ है।"

यह *संघ एक वर्ष तक छिपा रहा। दिल्ली अधिवेशनके अवसर पर जनताने इसका मूल्य आका। नैतिकताके पोषक वर्गोंने इसे अपना सहयोगी माना। देश व विदेशोंमे सब जगह इसका हार्दिक स्वागत हुआ। पण्डित नेहरू, आचार्य विनोबा आदि आदि विशिष्ट व्यक्ति इसकी असाम्प्रदायिक नीतिसे बड़े प्रभावित हुए। लोगोंने अनुभव किया कि महात्मा गाधीकी मृत्युके बाद सार्वजनिक क्षेत्रोंमे जो अहिंसाकी गति रुक गई थी, वह पुनर्जीवित हो चुकी है।

आजसे ढाई हजार वर्ष पूर्व भगवान् महावीरने अणुव्रतोंकी दीक्षा देकर गृहस्थ जीवनको सुसंस्कृत किया था। सामाजिक बुराइयोंको जडमूलसे उखाड फेंकनेके लिए क्रान्तिका शंख फूंका था। उन्हीं अणुव्रतोंको आधुनिक ढाचेमे ढालकर आचार्यश्री ने सामाजिक बुराइयोंके विरुद्ध जो नैतिक संघर्ष छेड़ा है, वह निश्चय ही आपकी मर्यादाके अनुरूप है। भारतके एक किसान और मजदूरसे लेकर राष्ट्रपति तक सभीने इसकी उपयोगिता

* विशेष विवरणके लिए देखो—अणुव्रतीसघ पहला वार्षिक अधिवेशन

स्वीकारकी है। विदेशोंमे इसका जो स्वागत हुआ, उससे जाना जाता है कि भारतके भाग्यमे जगद्गुरु होनेका श्रेय आज भी सुरक्षित है।

जैन-सिद्धान्तोंकी व्यावहारिकतामे सन्देह करनेवालोंको यह संघ सक्रिय उत्तर है। आदर्श व्यवहारकी सतहमे आकर ही यथार्थ बनता है। भगवान् महावीरके सिद्धान्त निवृत्तिमूलक होते हुए भी व्यवहारकी सचाईको लिए हुए हैं।

समय-समय पर जैनाचार्योंने अपनी पावन कृतियों द्वारा यह सन्देश जनताके कानों तक पहुचाया है। आचार्यश्रीने भी अपने युगमें धर्मका महान् नेतृत्व किया है, यह लिखते हुए इतिहासकारकी लेखनी गौरवसे नाच उठेगी।

जन-कल्याणकी भावना

आपकी प्रवृत्तियोंमे सर्वोदयकी—प्राणी मात्रके हितकी भावना रहती है। यही कारण है कि आप जन-जागरणके प्रतीक हैं। जनहितके लिए आपने पहले पहल *तेरह सूत्री योजनाका प्रसार किया। इसने अणुव्रती संघकी पीठिकाका काम किया।

१—निरपराध चलते-फिरते जीवोको जान बूझकर न मारना।

२—आत्म-हत्या न करना।

३—मद्य न पीना।

४—मास न खाना।

५—चोरी न करना।

६—जुआ न खेलना।

युगकी गतिविधिको देखते हुए जनताके मानसका परिचय पा लेना आवश्यक था। भूतवादके लोहावरणसे आच्छन्न संसार अध्यात्मवादको भूमिसात् किये चला जा रहा है। वैसी स्थितिमे पहले ही अणुव्रतीसंघका मूल्याङ्कन करनेको एक कुशाग्रता पूर्ण कार्य कहना चाहिए। भारतीय रंगमंच बदल गया, फिर भी आत्मा नहीं बदली। उसमे अब भी अध्यात्मकी लौ जल रही है, यह पाया गया। एक वर्षके थोडेसे प्रयासमे पचीस हजार व्यक्तियों द्वारा तेरहसूत्री योजनाका स्वीकार किया जाना उसका पुष्ट प्रमाण है।

७—झूठी साक्षी न देना।

८—द्वेष या लोभवश आग न लगाना।

९—पर स्त्री गमन न करना, अप्राकृतिक मैथुन न करना।

१०—वेश्यागमन न करना।

११—धूम्रपान व नशा न करना।

१२—रात्रि-भोजन न करना।

१३—साधुके लिए भोजन न बनाना।

साम्प्रदायिक एकता

जैन-धर्म समताप्रधान ही नहीं है, किन्तु समतात्मक है। ममताका मूल आत्माकी आन्तरिक भावनाओंमेंसे निकलता है। भगवान् महावीरकी वाणीमे जिसका रूप है—"आयतुले पयासु' जिसकी प्राणीमात्रके प्रति समता-बुद्धि है, वही सही अर्थमे समता का सन्देशवाहक हो सकता है। इस दिशामे जैन-आचार्योकी कृतिया बड़े गौरवके साथ उल्लेखनीय है।

भगवान् महावीरकी प्रकाशमान परम्परामे अनेक आचार्य तेजोमय नक्षत्रकी भाति चमके, कोटि-कोटि जनताके प्रकाश-स्तम्भ बनकर चमके। अस्त्र-शस्त्र या पशु-शक्तिके सहारे चमकनेका अर्थ है मर मिटना। जैन-धर्म इसका मूलतः परिपन्थी है। चमकना वह है कि बिना किसी दबावके जनता जिसे अपना

शिरमौर माने, जिससे पथ-दर्शन ले। सबके लिए पथदर्शक होना इसीके लिए सम्भव है, जो सबके लिए समान हो। "पियमप्पिय कस्स वि नो करेज्जा"—किसीका भी प्रिय-अप्रिय न करे, इस भावनाको साथ लिए चलनेवाला हो। लोग सोचेंगे कि किसीका प्रिय न करे, यह बात कैसी? गहराईमे जायेंगे तो पता चलेगा कि साम्यवादकी जड यही है। किसी एकका प्रिय सम्पादन करने वाला दूसरेका अप्रिय भी कर सकता है। एक परिवार, समाज या राष्ट्रके लिए प्रिय बात सोचनेवाला दूसरोंकी उपेक्षा किये बिना नहीं रह सकता। अध्यात्मवादी प्रिय-अप्रियकी बात नहीं सोचता। वह सोचता है सबके साथ साम्य बर्ताव की।

आचार्य श्री तुलसी इसी परम्पराके प्रतिनिधि है। आपकी सात्विक प्रेरणाओंसे साम्य-सृष्टिका जो पल्लवन हो रहा है, वह किसी भी धार्मिकके लिए गौरवका विषय है। जैन-एकता ही नहीं, अपितु धार्मिक सम्प्रदायमात्रकी एकताके लिए आपने जो दृष्टि दी है, वह इतिहास-लेखकके लिए स्वर्णिम पंक्तियाँ होगी।

आप सम्प्रदायोंको मिलानेके पक्षपाती नहीं, उनके हृदयोको एक सूत्रमे बाध देनेको उत्सुक है। धर्म-सम्प्रदायोंमे आपसमें वैर-विरोध, ईर्ष्या और विचारोकी असहिष्णुता न रहे तो वे अलग अलग रहकर भी विश्वके लिए वरदान बन सकते है। बगालके खाद्य-मन्त्री श्रीप्रफुल्लचन्द्र सेनने आपसे पूछा—क्या सभी धर्म-सम्प्रदायोंमे ऐक्य सम्भव है? आपने कहा—हा है। उन्होने पूछा—कैसे? आपने कहा—विचार-भेद मिट जाय, सभी

सम्प्रदाय मिल जायं, यह तो सम्भव नहीं है। किन्तु एक सम्प्र-दाय दूसरे सम्प्रदायके साथ अन्याय न करे, घृणा न फैलाये, आक्षेप न फैलाये, आक्षेप न करे, विचार-सहिष्णु रहे, थोड़ेमे मन-भेद मिट जाय तो बस फिर एकता ही है।

साम्प्रदायिक एकताका यह सवश्रेष्ठ व्यावहारिक मार्ग है। सब सम्प्रदाय मिटकर एक बन जायं, इसमे कितनी कठिनाइया है। दूसरे शब्दोंमे कितनी असंभावनाएं है, यह किसीसे छिपा नहीं है। उस स्थितिमे आपसी सद्भावना ही एकत्व हो सकती है।

आपकी अपनी नीति इस एकताके अनुकूल है। आप साम्प्रदायिक वैमनस्य और खण्डनात्मक नीतिमे विश्वास नहीं करते। दूसरे सम्प्रदायो पर आक्षेप करनेकी नीतिको आप घृणित और साम्प्रदायिक कलहका मूल-मन्त्र मानते है।

आपने जयपुरकी एक विशाल परिषद्मे प्रवचन करते हुए कहा:—

"धर्म-सम्प्रदायोंमे समन्वयके तत्त्व अधिक है, विरोधी तत्त्व कम। उस स्थितिमे धार्मिक व्यक्ति विरोधी तत्त्वोको आगे रख-कर आपसमे लडते है, यह उनके लिए शोभाकी बात नहीं है। उनको समन्वयकी चेष्टा करनी चाहिए।"

वह दिन धर्म-सम्प्रदायोके लिए पुण्य दिन होगा, जिस दिन उक्त विचार फलवान् होंगे।

सघ-शक्ति

तेरापथ संघ एकतन्त्रीय शासनका वेजोड उदाहरण है। उसमे एक आचार्यके नेतृत्वका सफल अनुशीलन होता है। नेतामें वात्सल्य और अनुयायीमे श्रद्धा हो, तब अनुशासनमे जान आती है। वहा अनुशासन ऊपरसे न आकर अन्दरसे निकलता है। इसे शास्त्रोंमे आत्मानुशासन या हृदयकी मर्यादा कहा गया है। आपके अनुशासनका मूल-आधार यही है। आपके नेतृत्वमे ६४० साधु साध्विया और लाखों श्रावक-श्राविकाएँ हैं। सघ-शक्तिका उपयोग केवल लक्ष्यकी ओर अग्रसर होनेमे होता है। खण्डनात्मक नीतिमे न विश्वास है और न उसका प्रयोग भी होता है। आजके इस जनतन्त्रीय युगमें एक तन्त्रीय धम-शासन सुननेमें स्यात् कुछ अटपटा सा लगे, किन्तु उसके कर्तृत्व

पर आवरण नहीं डाला जा सकता। नेता और अनुगामी दोनों आपसमें हृदयाकर्षणपूर्वक कार्य करें तो एकतन्त्रके समान स्वस्थ कोई दूसरी शासन-प्रणाली ही नहीं। धार्मिक शासनकी यह पद्धति राजनीतिक पण्डितोंके लिए अध्ययनका विषय है। भारत के लिए गौरवकी बात है।

शिष्य-सम्पदा

आचार्यश्री का जीवन एक विशिष्ट तपोभूमि है। उसका साधना-तेज दूसरोंके लिए सहज सिद्ध आकर्षण है। हजारों व्यक्ति त्यागके प्रति आकृष्ट हुए, यह उसीका फल है। श्रावक-जीवनकी दीक्षा और अणुव्रती दीक्षाके अतिरिक्त महाव्रत दीक्षा भी कम व्यक्तियोंने नहीं ली।

मुनि-जीवन नि.सन्देह कठोर साधना है, तलवारकी धारपर चलना है, लोहेके चने चबाना है, फिर भी एक महान् साधकके नेतृत्वमे उस पर चलनेकी आत्म-प्रेरणा सहज प्रौढ बन जाती है। युवक और बड़े बूढोंकी तो बात ही क्या? छोटे-छोटे किशोर कुमारोंने आपके नेतृत्वमे इस अग्नि-परीक्षाको सहज स्वीकार किया और सरल बनाया है। मानवताकी इस प्रयोग-

शालामे अनगिनत किशोर मानवताके चरम तक पहुच पाये हैं।

आसपासमे रहनेवालोंको लगा कि यह बहुत बडा काम हो रहा है, भौतिकताके विरुद्ध आध्यात्मिक सेनाका निर्माण हो रहा है। दूर खड़े लोगोंने मन ही मन सोचा—यह क्या हो रहा है? छोटे-छोटे बालक मुनि-जीवनकी ओर खिंचे जा रहे है? उन्हें बहकाया जा रहा है, फुसलाया जा रहा है, ललचाया जा रहा है आदि आदि।

यह सन्देह था और है, पर दूर रहनेका अर्थ सन्देहके सिवाय और हो ही क्या सकता है। आचार्यश्रीकी मूक साधनाने ऐसे व्यक्तियोंका निर्माण किया है, जो उनकी प्रतिभाके स्वयं प्रमाण है। चारित्र और विद्याके सुन्दर समन्वयसे जीवनका प्रासाद खडा करना, मजबूतीके साथ उसे आगे बढाना आचार्यश्रीके स्वयम्भू व्यक्तित्वका सहज परिणाम है। आपके शिष्योंकी मूक कृतियो का उल्लेख कर मै इन्हे सीमामे बाधनेकी प्रागल्भता कर सकता हू, किन्तु फिर भी मै एक पुस्तकके बीचमे दूसरी पुस्तक लिखनेको तैयार नहीं हू। इसलिए मैं एक दिवंगत बालमुनि कनककी, जो कसौटी पर कनक ही रहा, चर्चा कर इस प्रसंगसे मुक्ति पा लूँ, ऐसी मेरी इच्छा है। मुनि कनककी जीवन-गाथा आचार्यश्रीके जीवनसे इस प्रकार जुड़ी हुई है कि उसका उल्लेख किसी अंशमे भी अप्रासांगिक नहीं लगेगा। इसमे आचार्यश्रीकी निर्माणकारी प्रवृत्तियो और बालककी विवेकपूर्ण मनोवृत्तिके अध्ययनकी सामग्री मिलेगी।

बहुधा लोग अवस्थाकी वात सुनते ही घवडा जाते हैं, धीरज खो वैठते हैं, किन्तु यह उचित नहीं। अवस्था और वुद्धिका मेल वडा विचित्र होता है। उसके आधार पर एकाङ्गी निर्णय करना व्यक्ति-स्वातन्त्र्यके साथ खिलवाड नहीं तो और क्या है ? वहुतसे वूढे वालक होते हैं और वालक वूढे। वूढे और वालक केवल अवस्थासे नहीं होते। उनके और भी अनेक कारण हैं। अवस्था कोई गुण नहीं, वह तो एक काल-परिवर्तनकी स्थिति है। वह सवको आती है, क्रमश आती ह, उसमे कोई परिवर्तन नहीं होता। *महाकवि कालीदासने 'वृद्धत्व जरसा विना' इस सूक्ति से वय स्थविरके अतिरिक्त स्थविरोका संख्या-निर्देश करते हुए लिखा हे —

"अनाकृष्टस्य विपयै, विद्याना पारदृश्वन ।
तस्य धर्ममतेरासीद्, वृद्धत्व जरसा विना ॥

अर्थात् वैराग्य, ज्ञान और सदाचार– धर्मसे भी मनुष्य स्थविर वनता हे। विवेचना-शक्तिका प्रादुर्भाव होता है कि वालक वूढा बन जाता है। मे जिस वालककी जीवन-कहानी लिख रहा हू, वह उक्त पंक्तिका अपवाद नहीं था। वयसा शिशु होने पर भी वह वैराग्य, विवेक और सदाचारसे प्रौढ था। जन्म-परम्पराके अनुसार वह इस नश्वर संसारके निर्घृण प्राङ्गणमे एक घटना-चक्र लिये हुए आया। दश वर्ष तक उसी लीलामे रमण करता रहा।

---

* रघुवश प्रथम सग श्लोक २३।

दिव्य आकृति थी, शरीर सुकुमार था, सबसे गजबकी थी वह मृदु मुस्कान, जो दर्शकोंको मुग्ध किये बिना न रहती। विद्या की अभिरुचि थी। हिन्दी और इङ्गलिशका अभ्यास चालू था। पवनकी गति बदली। बालकके विचारोंमे आन्दोलन हुआ। विरक्तिके भाव उमड पड़े। चालू जीवनसे मुंह मोडा। दीक्षा लेने को कटिबद्ध हो गया। यह कैसे हो सकता है? क्यों हुआ? क्या इस वयमे दीक्षाका बोध भी सम्भव है? मैं इन प्रश्नोका विस्तृत उत्तर न देकर सिर्फ इतना ही कहूंगा कि यह हो सकता है, ऐसा हुआ है और यह सम्भव है। क्यो और कैसेका उत्तर आप मानस-शास्त्रियोंसे लीजिए, उनसे मानस-विश्लेषण कराइये।

पिता (कन्हैयालालजी) और पुत्र दोनों आचार्य श्री तुलसी के सामने करबद्ध प्रार्थना करने खड़े हुए—महामहिम। हम विरक्त हैं, दीक्षाके अभिलाषी है, हमारी मनोभावना सफल करनेकी कृपा करें। आचार्यवरने उन्हें देखा, उनकी अन्तरभावनाकी झाकी ली और उन्हें इन शब्दों द्वारा सान्त्वना दी कि अभी साधना करो।

तेरापन्थके नियमानुसार आचार्य अथवा उनकी विशेष आज्ञा के सिवाय और कोई दूसरा दीक्षा नहीं दे सकता। यही कारण था कि वे दीक्षाका निर्देश पानेके लिए बार-बार आचार्यश्री से प्रार्थना करते रहे। पूर्ण परीक्षणके बाद आचार्यश्रीने उन्हें दीक्षा की स्वीकृति दी। सं० १९९५ (कार्तिक शुक्ला ३) मे सरदारशहर मे उनकी दीक्षा हुई।

दीक्षाके थोडे समय पश्चात् कन्हैयालालजीकी भावना शिथिल

हो गई। वे दीक्षाके कष्टोंसे घवडा गये और उन्होंने पुन गृहस्थी मे जानेका निश्चय कर लिया। यद्यपि वे (कन्हैयालालजी) दश वर्पसे दीक्षा लेनेको उत्सुक थे। फिर भी दीक्षाके परिपह कम नहीं होते। जो व्यक्ति गृहस्थकी सुख-सुविधाओमे परिपक्व हो जाता है, अनुशासनहीन सामाजिक जीवनमे रम जाता है, शारीरिक श्रम नहीं करता है, वह उन पके हुए सस्कारोको लेकर साधु-सस्था मे दीक्षित वने तो उसके लिए तेरापन्थ साधु-संस्थामे सम्मिलित होना एक बडी समस्या है। साधु-जीवनकी कठिनाइया हैं, वे तो हैं ही, उनके अतिरिक्त सुदृढ अनुशासनमे रहना, कठोर श्रम करना, स्वावलम्वी रहना, दूसरोका कहा मानना, उलाहना सहना आदि आदि ऐसी प्रवृत्तिया हैं, जो कच्चे-पक्के ससारके रगमे रगे हुए व्यक्तिके लिए दुरूह होती हैं।

वाल-जीवन उन सासारिक सुविधाओ एवं शिथिलताओंका आदी नहीं होता। इसलिए वह सरलतापूर्वक साधु-संस्थाकी कठिन प्रवृत्तियोमे भी अपना जीवन ढाल लेता है और उनके अनुकूल वना लेता है। पिता-पुत्र इसके सजीव उदाहरण हैं। ४५ वर्पका पिता घर जानेकी सोच रहा है और १० वपका पुत्र सव कठिना-इयोंको चीरता हुआ सयम-साधनामें अग्रसर होता जा रहा है।

पिताने पुत्रको पुन घर लौटनेको कहा। उनने यह कव सोचा कि मेरा पुत्र मेरी वातको टाल देगा। उन्होने देखा कि मैं कठिनाइयोंसे घवडा गया, तव यह कैसे नहीं घवडाया होगा। मैं वूढा होने जा रहा हू, यह आखिर वालक है। पर उन्होने

'न च वय.' इसपर ध्यान नहीं दिया, अन्यथा वे अपने पुत्रको समझानेका कष्ट न करते। पुत्रने पितासे कहा—आश्चर्यभरे स्वरमें कहा—यह क्यों ? आपके मुहसे ये शब्द निकले। मैं नहीं सुनना चाहता ऐसे शब्द ।। अपन कितने वैराग्यसे घर बार छोड़ कर दीक्षित हुए है। लाखोंकी सम्पत्ति, पूरा परिवार, बड़े बड़े मकान क्या इसीलिए थोड़े ही छोड़े है कि हम घर वापिस चले-चलें। मैं अधिक क्या कहू ? आप स्वयं समझदार है, आखिर आपकी ऐसी भावना हुई क्यों ? यह तो बतायें। पिताने बात को टालते हुए कहा—नहीं, यों ही मैं तेरी परीक्षा करता हूं—तेरी भावना कैसी है, तू संयममे कैसा रमा है ?

थोडे दिन बीते, फिर वही घोडा और वही मैदान। पिताने पुत्रको ललचानेकी बातें शुरू कर दीं। मीठे-मीठे शब्दोंमे कहा—देख, अपन वैराग्यसे साधु बने, घर छोडा, यहा साधुपन नहीं पल रहा है। फिर व्यर्थ ही क्यो कष्ट सहें ? आत्म-कल्याण गृहस्थीमे जाकर भी कर लेंगे। पुत्रने फिर पिताको समझाया—आप अपनी दुर्बलताको साधु-संस्थाके शिर न मढ़ें। आपको यह काम करना उचित नहीं। थोड़ी सी कठिनाइयोंसे घबड़ाकर शिथिल होना आपको शोभा नहीं देता। मैं आपकी यह बात कभी नहीं मान सकता, चाहे जो कुछ भी हो जाये।

पिताका प्रयत्न फिर असफल रहा।

उन्हें दीक्षा स्वीकार किये दो-ढाई महीने हुए थे। राजलदेसर की बात है। आचार्यश्री रात्रि-प्रतिक्रमण कर विराज रहे थे।

मुनि कनक वहा आये और आचार्यश्रीको अभिवन्दन कर एकात मे उनने आचार्यश्रीसे पूछा—यदि कोई शंकासहित शासनमे रहे तो कैसे ? आचार्यश्रीने उत्तर देते हुए कहा—शकासहित शासन मे नहीं रहना चाहिए। आचार्य भिक्षुकी यह मर्यादा की हुई है कि कोई भी साधु सन्दिग्ध भाव या सकोचपूर्वक शासनमे न रहे। आचार्यश्रीने कहा—तू यह क्यों पूछता है ? इसका प्रयोजन क्या है ? उत्तरमें मुनि कनकने प्रार्थनाकी कि मै इसे जानना चाहता हू।

कन्हैयालालजीकी प्रवृत्तियोंमे व्यग्रता वढती गई। वह वाल-मुनि उन्हें समझता रहा। आखिर पिताको यह निश्चय हो गया कि मेरे कहनेसे यह मेरे साथ जानेवाला नहीं है। उन्होने दूसरा प्रयोग प्रारम्भ किया। आचार्यश्रीसे वार वार मुनि कनक के वारेमे पुकार करने लगे—यह अविनीत है, मेरा कहा नहीं मानता। आचार्यश्रीने मुनि कनकको उलाहना दिया और आगे पिताके कहे अनुसार चलनेका निर्देशन किया। ऐसी घटनाएं भी कई वार घटीं। यह एक वडी समस्या थी।

वालककी प्रवृत्तियोंको देखते हुए यह अनुमान तक लगाना कठिन था कि यह अविनीत है। दूसरी ओर पिता पुत्रके अहित की वात सोचता है, यह जानना भी दुरूह था। आखिर 'अन्धेर नहीं कुछ देर है' वाली जनोक्ति चरितार्थ हुई। कन्हैयालालजीको यह दृढ निश्चय हो गया कि कनक मेरे प्रयत्नोंसे मेरे साथ जाने-वाला नहीं। इसलिए उन्होंने ऐसी प्रवृत्ति करनेका सोचा कि

आचार्यश्री इसे बहुत ज्यादा उलाहना दे और उससे घबडाकर यह स्वयं मेरे साथ चलनेको तैयार हो जाये।

एक रातको उन्होंने आचार्यश्रीकी सेवामे कनककी अविनीत प्रवृत्तियोंकी पोथी पढ डाली। आचार्यवरने मुनि कनकको कुछ कठोर उलाहना दिया और कहा कि तू बापका अविनीत है, इसलिए मैं तुझे पढाना बन्द कर दूंगा। इससे बालकका सुकुमार हृदय सिहर उठा। कुछ-कुछ आखें भी गीली हो गईं। वह चाहता था कि मैं आचार्यश्रीसे कुछ निवेदन करूं, पर उस बुद्धिमान् बालककी पलकों पर 'इतो व्याघ्र इतस्तटी' वाला दृश्य नाच रहा था। एक और वह पिताके हितकी चिन्तामे था, दूसरी ओर आचार्यवरकी अप्रसन्न दृष्टि भी उसके लिए असह्य थी। फिर भी ऐसी परिस्थिति आई कि उसने एक निर्णय किया और वास्तविक स्थितिको आचार्यश्रीके सम्मुख रखना उचित समझा।

कुछ क्षणोके बाद आचार्यश्रीने पूछा—क्या तूं कुछ कहना चाहता है? स्वीकृतिके स्वरमे उसने प्रार्थना की। आचार्यवरने कहा—कह दे। उसने प्रार्थना की—एकान्तमे निवेदन करूंगा। साधु दूर चले गये। आचार्यवरके सान्त्वनापूर्ण शब्दोंका उसे कुछ संबल मिला और उसने वस्तुस्थिति सामने रखनी प्रारम्भ की। निवेदनकी प्रारम्भिकतामें ही उसने आचार्यश्रीका दृष्टिकोण बदल दिया। उसके पहले शब्द ये थे—आप मुझे फरमाते है कि मैं कन्हैयालालजी स्वामीके पास जाऊं, उनका कहा मानूं और वे मुझे घर ले जाना चाहते है। मैं जाना नहीं चाहता। इस

दशामे हमारी कैसे पट सकती है ? आचार्यवरने विस्मय और खिन्नताके शब्दोंमे कहा—यह कबसे ? उत्तरमे कहा—माघसे—दो ढाई महीनोंसे। आचार्यश्रीने कहा—पहले तूने क्यों नहीं कहा ? उसने प्रार्थना की—मैंने आचार्यश्रीसे पूछा था—"शंका सहित साधुपनमे रहना चाहिए या नहीं" इसका तात्पर्य यही था। "यदि तूं मेरी बातें कहीं कह देगा तो मैं अनशन कर दूंगा"—कन्हैयालालजी स्वामीने मुझे यो कई बार कहा, इसलिए मैं स्पष्ट रूपमे कुछ भी कहनेमें संकोच करता रहा। मैंने सोचा कि मैं उनको समझा लूंगा। किन्तु मेरी चेष्टाएं विफल रहीं। मैं कई बार आपका उलाहना सह चुका, फिर भी मैंने कुछ भी कहना नहीं चाहा, सिर्फ इसलिए कि मेरे संसारपक्षीय पिता ज्यों-त्यो पुन सुदृढ हो जाएं। आचार्यवरने मुनि कनकको आश्वासना दी और उसे संयम-प्रवृत्तिमे पूर्ववत् सजग रहनेकी शिक्षा दी। कन्हैयालालजीको इस बातका पता चला, तब वे अधीर हो उठे। अपनी दुष्प्रवृत्तिको छिपानेके लिए कई कुचेष्टाएं कीं और मुनि कनककी ओरसे सर्वथा निराश होकर गणसे पृथक् हो गये।

आचार्यवरने कनकसे कहा—तेरा पिता साधु-सस्थासे पृथक् हो गया है। तेरी क्या इच्छा है ? यहा तो मर्यादापूर्वक चलना होगा, साधु-जीवनकी कठिनाइया सहनी होंगी। उलाहने सहने होंगे। तेरा पिता तुझे ले जाना चाहता है • • ••• • ।

आचार्यवरके ये शब्द सुन बाल-मुनि त्वरासे बोला—गुरुदेव। आत्म-साधनाके पथमें पिता-पुत्रका सम्बन्ध कैसा ?

आप मेरे धर्मपिता है। मैं साधुव्रत कभी भंग नहीं करूंगा। मैं आपके अनुशासनमे प्रसन्न हू। मैं निरन्तर आपके निर्देशानुसार आत्म-साधनामे अग्रसर होऊं, यही एकमात्र मेरी मनोभावना है गुरुदेव। कठिनाइयां। दीक्षा यह सोच-विचारकर ही ली थी कि साधु-जीवन कठिनाइयोंका घर है, मैं उनका हँस-हँसकर सामना करूंगा, उन्हें चीरकर आगे बढूंगा। उलाहना। त्रुटि हुए बिना आप उलाहना देंगे नहीं, मेरी त्रुटिपर मुझे उलाहना मिले, उसमे मैं खिन्न क्यों होऊँ। उसे मैं मेरी त्रुटिका प्रायश्चित्त समझूंगा। गुरुदेव। आप मुझपर वात्सल्य रक्खें और शीघ्रातिशीघ्र मैं उन्नति करूँ, ऐसा मार्ग-दर्शन करें।

बालककी विवेकपूर्ण बातोंने अपने प्रति आचार्यश्रीके हृदय मे एक आकर्षण पैदा कर दिया। नियमित अध्ययन प्रारम्भ होगया। उसके विनय और सौम्य भावनाओंसे आकृष्ट न होता, उसे देख, उसकी प्रवृत्तियोंको देख, उसके उज्ज्वल भविष्यकी कल्पना न करता, ऐसा कौन था?

अवश्यम्भावी भावकी सत्ता बलवती होती है—यकायक बाल-मुनिको ज्वर आया। किसने जाना कि यह चिरसमाधिका अग्रदूत है। वह सामान्य ज्वर 'भाव' (मियादी ज्वर) के रूप मे बदल गया। कफका प्रकोप बढ गया। बालजीवन, साधु-जीवनकी कठिनाइयां, व्याधिकी भीषणता, फिर भी वह मृदु-मुस्कान अखण्ड रही, हँसते-हँसते कष्टोंको झेला। नहीं सुना कभी किसीने उसके मुँहसे ओह। हाय! चू तक। वह अवस्था

मे बालक था, कौन कह सकता है कि वह कृतियोंमे प्रौढ नहीं था। उचित चिकित्सा चली, फिर भी उससे कोई लाभ नहीं हुआ।

अन्तिम शब्दोंमे आचार्यवरसे उसने प्रार्थना की—मुझे आप महाव्रतोंकी आलोचना कराइये, मैंने कोई त्रुटि की हो उसका प्रायश्चित्त दें।

आचार्यश्रीने स्वयं उसे महाव्रतोंकी आलोचना कराई। वह जीवन्मुक्त बालक आचार्यवरके चरण-कमलोंकी उपासना करता-करता समाधिलीन हो गया। उसकी कृतिया समूचे सघ और सघपतिके हृदयमे आज भी अमिट हैं और रहेंगी।

ऐसे प्रौढ बालक दीक्षाके लिए अयोग्य नहीं माने जा सकते।

दीक्षाके बारेमे आचार्यश्रीका दृष्टिकोण बहुत साफ है। जयपुर-चातुर्मास (वि० २००६) मे बाल-दीक्षाका प्रबल विरोध हुआ। हालाकि वहा होनेवाली दीक्षाओंमे १५ वर्षसे कम आयु का कोई न था, फिर भी 'बाल-दीक्षा-विरोधी समिति' ने बडा उग्र आन्दोलन चलाया। आचार्यश्रीके अपूर्व कौशल और सघ-बलके सामने उन्हें सफलता नहीं मिली, किन्तु परिस्थिति जटिल थी, इसमे कोई सन्देह नहीं। सचाई हमारे पक्षमे थी इसलिए परिणाम सदा हमारे अनुकूल रहा।

आचार्यश्रीका वह सूत्र कि "हम किसी अवस्थासे सम्बन्धित दीक्षाके समर्थक नहीं, योग्य दीक्षाके समर्थक है।" बहुत सफल रहा।*

---

* विस्तृत जानकारीकेलिए देखिए आचार्यश्री तुलसीकी 'जयपुर-यात्रा'।

दैनिक कार्यक्रम

जीवनका कार्यक्रम निश्चित होना चाहिए, यह एक संगत बात है। किन्तु इसके मूलमे यान्त्रिकता या जडता नही होनी चाहिए। मेरे नम्र मतानुसार कार्यक्रमकी निश्चितताका अर्थ यही होना चाहिए कि समय अफल न जाए, मनमे अस्तव्यस्तता न रहे, उसमे चैतन्य बना रहे। शत-प्रतिशत महत्त्ववाले कार्य के लिए अगर गौण कार्यकी समय-तालिका कुछ इधर-उधर हो जाय, तो उसमें अनिश्चितता जैसी क्या त्रुटि है। समयमें से सफलता निकले, यही आचार्यश्रीकी दिनचर्याका प्रमुख सूत्र है। उसकी साधारण रूपरेखा मैं पाठकोंके सामने रख दूं।

साधारणतया आप करीबन चार बजे उठते हैं। सबसे पहला कार्य होता है स्वाध्याय और आत्मचिन्तन। एक मुहूर्त्त

रात रहते-रहते आपके पार्श्ववर्ती साधु आपको वन्दन कर सघकी मर्यादाओका आवर्तन करते है, वह आप स्वय सुनते हैं। उसके बाद सूर्योदयसे कुछ पहले तक आत्मालोचन करते हैं। गावसे बाहर दूर क्षेत्रमे शौचके लिए जाना यह भी एक खास बात है। इसमे श्रम, टहलना-घूमना आदि सहज ही हो जाते हैं। प्रात-काल एक घण्टाके लगभग व्याख्यान देनेका समय है। भोजनमें बहुत कम समय लगाते हैं। आपके आहारकी दो बातें विशेष उल्लेखनोय है—सख्या और मात्रामे कम चीज और कम बार (सिर्फ दो बार) खाना तथा उसके स्वाद, अस्वादके विषयमे कुछ न कहना। आप आहारके बाद थोडे समय हल्का-सा विश्राम करते हैं। उस विश्राममे भार न बने, ऐसे साहित्यका अवलोकन किया करते हैं। दिनमें सोनेका विशेष स्थितिके बिना काम नहीं पडता। करीब दो घण्टेका समय साधु-साध्वियोके अध्यापनमे लगता है। करीब दो-ढाई घण्टे आगन्तुक व्यक्तियोंसे बातचीत, प्रश्नोत्तर आदिके लिए है। सामान्यत दो घण्टे या श्रमके अनुपातमे कमवेशी मौन करते हैं। उस समय तथा शेष समयमे मनन, साहित्य-सृजन आदि निजी प्रवृत्तिया होती हैं। शामको फिर सूर्यास्तके बाद आत्मालोचन, प्रार्थना, कभी-कभी प्रार्थना-प्रवचन और स्वाध्यायके बाद करीब दश बजे आप शयन करते हैं।

पाठकोंको आश्चर्य होगा, सम्भव कोई भी न माने, किन्तु यह सच है कि सघकी व्यवस्थामें आपका अपेक्षाकृत बहुत कम समय

लगता है। कारण स्पष्ट है। आपका संघ 'तेरापन्थ' मूलतः आत्मानुशासनकी भित्ति पर रहा हुआ है। इसलिए उसे अपेक्षा आपके नेतृत्वकी ही है। आप स्वयं कई बार कहा करते है—

"हमारे पूर्वाचार्योंने बड़ी सुन्दर नियमावली बनाई है, इसलिए मुझे संघकी देख-रेख तथा विकासके अतिरिक्त व्यवस्था सम्बन्धी बहुत कुछ नहीं करना पडता।"

आप दैनिक कृत्योंको विकास और सफलताकी दृष्टिसे बहुत महत्त्व देते है।

वार्षिक कार्यक्रम

१ वर्षके दिन होते है करीव ३६०। घडियों और पलोंकी गिनती इससे भी वडी होती है। महापुरुषके कार्यकलाप इससे भी आगे डग भरते है। कल्पना और रूप-रेखाओकी तो वात ही क्या? अगर मैं भविष्यद्रष्टा योगी या कल्पना-गृहका कुशल शिल्पी होता तो तूलिकाकी एक रेखामे सारा चित्र खींच डालता, किन्तु मै वैसा नहीं जानता।

छोटा-मोटा आदमी स्थूल जगत्को ही अपना केन्द्र-विन्दु माने चलता है। "तेते पाव पसारिये जेती लम्वी सोड"—यह मुझे याद है। मैं वारीकीको छोड कर चलू, उसमे मेरा उपहास नहीं होगा।

आचार्यश्रीका वार्षिक कार्यक्रम एक विशाल पोथी है। उसके

कुछ एक पृष्ठोंमे रंग भरूं, वही पर्याप्त होगा।

आचायश्रीकी वार्षिक-यात्रा नव-कल्पी विहारके रूपमें पूरी होती है। आजीवन पाद-विहार होता है और कहीं स्थायी आश्रम है ही नहीं।' इसलिए चातुर्मास कालमे एक जगह चार मासकी स्थिति और शेषकालमे अष्टकल्पी विहार होता है—एक माससे अधिक कहीं नहीं रहते। मृगसर कृष्णा प्रतिपदाका दिन चतुर्मासान्त विहारका और मर्यादा-महोत्सवकी भूमिकाका दिन है।

मर्यादा-महोत्सव तेरापन्थ-संघकी एकता और संगठनका महान् प्रतीक-पर्व है। वह माघ शुक्ला सप्तमीको होता है। उस दिन आचार्यश्री मर्यादापुरुषोत्तम आचार्य भिक्षुकी रची हुई मर्यादा सुनाते हैं। सब साधु-साध्विया उनकी प्रतिज्ञाओको दोहराते है- अपनी सहर्ष सम्मति प्रगट करते है।

जहां आचार्यश्री होते है, वहां साधु-साध्विया आ जाते हैं। आनेके पहले क्षणमे जो 'सिंघाड़ा'[1] के मुखिया होते है, वे पुस्तकों और अपने पास रहे साधु-साध्वियो तथा अपनेआपको आचार्य-श्री के चरणोंमे समर्पण करते है। समर्पणकी शब्दावली यह होती है—"गुरुदेव। आपकी सेवामे ये पुस्तकें प्रस्तुत है, ये साधु या साध्वियां प्रस्तुत है, मैं प्रस्तुत हूं, आप मुझे जहा रक्खेंगे, वहा रहनेका भाव है।"

१--साधारणतया एक सिंघाडेमें ३ साधु अथवा ५ साध्विया होती हैं।

वाहरसे आये हुये साधु-साध्विया अपना वार्पिक कार्य-क्रम का विवरण-पत्र आचार्यश्रीकी सेवामें प्रस्तुत करते हैं।

लगभग १२५ विवरण-पत्रोंका आचार्यश्री स्वयं निरीक्षण करते है। उनकी व्यवस्था करते हैं। प्रत्येक 'सिंघाडे' की चर्या और रहन-सहनका मौखिक विवरण सुनते है।

शिशिर-ऋतु जनताके लिए शरीर-पोपणका काल है, तेरापंथ के लिए ऐक्य-पोषणका और आचार्यश्रीके लिए श्रमका काल है।

वसन्त पचमीसे आगामी वर्पकी व्यवस्था शुरू होती है। वह दृश्य वडा मनहारी होता है, जव आचार्यश्री साधु-साध्वियोको आगामी वर्पके विहारका आदेश देते जाते हैं और वे कर-वद्ध खडे हो उसे स्वीकार करते जाते हैं। साहित्य-सजन, अध्ययन-अध्यापन, लेखन आर्ि की वार्पिक व्यवस्था यहींसे वनती हैं। एक प्रकारसे महोत्सवके दिन नये वर्पके आदि दिनके प्रति-रूपक हैं।

महोत्सवके वाद आगामी वर्पका जीवन-सम्वल ले साधु-साध्वीगण निर्दिष्ट-यात्राकी ओर कूच कर जाता है। आचार्यश्री के विहारका भी नया क्रम प्रारम्भ हो जाता है जो लोग आचार्य-श्रीकी निकट सम्पर्कमे सेवा करना चाहते है, उनके लिए फाल्गुन और चैत्र मास अधिक उपयुक्त होते है। प्रात कालीन व्याख्यान प्राय १२ मास चलता है। गावके लोगोंको कम मौका मिलता है इसलिए विहार-कालमे दोपहर और रातको भी आचार्यश्री स्वयं व्याख्यान देते हैं। सैकडों गांवोका विहार, हजारो लाखो

लोगोंका आवागमन, हजारों व्यक्तियोंसे वातचीत और प्रश्नोत्तर आदि २ प्रवृत्तियाँ आपके लिए सहज जैसी है। आपको विश्राम करनेकी जितनी प्रार्थना सुननी होती है, उसका शतांश भी विश्राम करनेका अवसर नहीं मिलता। आप कहते हैं—"मैं जो काम करता हू उसमे मुझे पूरा रस मिलता है। हमारे साधुओंको प्रत्येक कार्यमे उत्साह और आनन्द होता है—होना चाहिए। इसलिए अलग विश्राम करनेकी फिर क्या आवश्यकता?" यह वात भगवान् महावीरकी "ननत्थ निज्जरट्ठयाए" केवल आत्म-आनन्दके लिए करो – वाली शिक्षाकी याद दिला देती है।

आपकी ज्ञान-रश्मियोका आलोक और व्यक्तित्व जनताके लिए महान् आकर्षणके हेतु है। समयकी खींचातानीमे भी कई व्यक्ति आपका सफल समय मात्रासे अधिक लेते है, तव दूसरोंको अखरे विना नहीं रहता। वे अपनी मनोभावना आपके कानों तक पहुंचा देते है। उत्तर मिलता है – "कोई व्यक्ति मेरे साथ हो वातचीत करनेकी विशेष उत्सुकता लिए आता है, तव मैं उसे निराश कैसे करूं।" एक विशाल संघके शक्तिसम्पन्न नायक इतने सामीप्यसे वात करें, एक-एक व्यक्तिको समझावें, गणके इतिहाससे लेकर निगूढ रहस्य तक वतायें—यह एक आश्चयकी वात है और कार्यभारको अधिक गुरुत्व देनेवाली कथा है। अनेक आध्यात्मिक आयोजनोंका संचालन करनेके अतिरिक्त आप अनेक उन्नायक प्रवृत्तियोंके स्रोत भी वनते है। आपकी हार्दिक हिलोरें सचमुच दूसरोंको अचम्भेमे डालनेवाली होती हैं।

वे दूसरोंके लिए तभी सम्भाव्य बनती है, जब आपकी सतत साधना उन्हें सम्पन्न किये देती है।

चतुर्मासमें दो महत्त्वपूर्ण उत्सव होते हैं—एक भाद्र शुक्ला नवमीको आपके पट्टारोहण-दिनके उपलक्ष्यमें दूसरा भाद्र-शुक्ला त्रयोदशीको आचार्य भिक्षुके चरम-दिनकी पुण्य स्मृतिमे। इनमे साधु-साध्वियोंका वह स्फूर्तिदायक मिलाप नहीं होता, बाकी सारा कार्य-क्रम माघ-महोत्सवकी स्मृतिको ताजा करनेवाला होता हैं। विशेष बात नवमीको पूर्ववर्ती ८ आचार्योंका ससम्मान प्रतिनिधित्व करते हुए आप जो नीति सम्पादन करते है, तब आपका व्यक्तित्व बहुमुखी-सा प्रतीत होता है। तेरसको आप आचार्य भिक्षुको श्रद्धाजलि अर्पण करते-करते स्वयं आचार्य भिक्षु बन जाते हैं। उनकी आत्मा आपमें प्रतिबिम्बित हो उठती है। उनका त्याग और आत्म-उत्सर्ग साकार हो बोल उठता है। जैसा कि श्री हरिभाऊ उपाध्याय (अजमेर राज्यके मुख्य मन्त्री) ने अपने एक *पत्रमे लिखा है—

"पूज्य स्वामी भिक्षुजीके चरित्र और आपका आजका तद्विषयक व्याख्यान मुझे बहुत प्रभावकारी मालूम हुआ। ऐसा लगा मानो उनकी आत्मा आपमें बोल रही हो।"

आचार-विचार, साहित्य-संस्कृति, कला-कौशलका उन्नयन करनेके साथ-साथ कठोर चर्या, उत्कट अनासक्ति, उपवास, मौन

---

* ता० १४-९-५१

अल्प-आहार आदि अनेक सात्त्विक प्रेरणाओंको संजीवन दिये महान् वर्ष पूरा हो जाता है और आगेके लिए अधिक अवकाश और अधिक संभावनायें छोड जाता है।

सत्य-निष्ठा

आप प्रत्येक व्यक्तिको, चाहे वह कैसा ही हो, अपने मन्तव्य बडी निर्भीकतासे बताते है। लोग दया-दानकी प्रवृत्तिको लेकर आपकी परम्पराप्राप्त विचार-पद्धतिपर आक्षेप करते है, उसे आप आगन्तुकके सामने सहज भावसे रखते हैं। सर पेट्रिक स्पेंशको आपने दया-दान सम्बन्धी विचार बताये, तब कई कट्टरपन्थी लोगोंको भी यह कहते सुना कि आचार्यश्री अपने विचार रखनेमे नहीं चूकते, चाहे कोई भी आये।

अभी थोडे समयकी बात है, कलकत्ता विश्वविद्यालयके प्रोफेसर डा० नत्रलक्षनाथ दत्त एम० ए०, बी० एल० पी० आर-एस०, पी० एच० डी०, डी०लिट् आचायश्रीके दर्शन करने आये।

वार्तालापके दौरानमे आचायश्री* ने दान-दयाका विवेचन करते हुए बतलाया।

"पापाचरणसे अपनेको बचाना, दूसरोंको बचाना यही नैश्चयिक दया है—आध्यात्मिक अनुकम्पा है। दीन-दुःखियों पर दया दिखाकर उनकी भौतिक सहायता करना, जीवन-रक्षा करना सामाजिक तत्त्व है। समाजके व्यक्ति जीवित रहें, सुखी रहें, सुखसे जीएं—यह सामाजिकोंका दृष्टिवेध है। अतः अपने दूसरे सामाजिक भाईकी सहायता करना सामाजिक कर्तव्य है। उसे धर्मसे क्यों जोडा जाय ? धर्ममे जीने जिलानेका महत्त्व नहीं है। उसमे उठने उठानेका महत्त्व है। आज सर्वत्र 'जीओ और जीने दो, की तूती बोलती है, किन्तु हमारा नारा इससे प्रतिकूल है। वह है—उठो और उठाओ—स्वयं उठो—आत्मोत्थान करो और दूसरोंको उठनेकी प्रेरणा दो, उनके सहायक बनो।

एक व्यक्ति कहीं जा रहा है। रास्तेमे चींटी आ गई। 'चींटी को कुचलकर मेरी आत्मा पापलिप्त न हो जाय' यह सोच वह अपना पैर खींच लेता हे। उसकी आत्मा उस सम्भावित हिंसा-जन्य पापसे बच जाती है, साथमे प्रासंगिक रूपसे चींटीके प्राण भी बचते है। अब प्रश्न होता है कि उस व्यक्तिने अपने प्रति दया की या चींटीके प्रति ? अपनेको पापसे बचाया, यह दया है

---

* जैन भारती वर्ष १२ अक १३ मार्च १९५१ 'आत्मा और दयादान' शीर्षक लेखमे।

अथवा चींटीके प्राण बचे, वह दया है ? यदि कोई कहे कि चींटी का बचना दया है, तो कल्पना कीजिए उस समय तूफान (आंधी) आ गया, चींटी उड गई अथवा उसी समय वह चींटी किसी दूसरे व्यक्ति द्वारा कुचल दी गई, तो क्या उसकी दया नष्ट हो गई ? गम्भीरतासे सोचने और मनन करनेका विषय है, वास्तव मे उसने अपने आप पर दया की।"

प्रोफेसर—यह वस्तुत बडा मौलिक और तात्त्विक सिद्धान्त है। अवतक हम यही सुनते, समझते और पढते आये हैं—'स्वयं जीओ और जीने दो,' किन्तु आज आपसे यह समझकर प्रसन्नता हुई कि वास्तविक दृष्टि कुछ और है। जीने, जीने देने और जिलानेका क्या महत्त्व है, वास्तविक महत्त्व तो उठने तथा उठानेका ही है, तथा इसी प्रकार तत्त्वत दया अपनेआपके प्रति ही होती है।

आचार्यश्री—धार्मिक जगत्मे लोगोंने 'दान' का वडा दुरुपयोग किया। जिस किसीको दे देना ही दान है—धर्म-पुण्यका हेतु है, यह धारणा धार्मिक जगत्में बद्धमूल हो गई। किन्तु जैन-विचारधारा इसके प्रतिकूल है। आचार्य भिक्षुने बताया है—दानके सच्चे अधिकारी सन्यासी—सयमी साधु हैं, जो आत्म-साधनाके महान् लक्ष्यको पूरा करनेमें लगे रहते हैं, जो पचन-पाचन तथा उत्पादन आदिसे निरपेक्ष और नि संग

है। उनके संयमी जीवनके लिए उपयोगी अन्न, वस्त्र आदि सामग्री (स्वयं अपने लिए संकोच कर) देना धर्म-दान है।

प्रोफेसर—ऐसा लगता है, आपका दान विषयक विचार पुरातन-कालीन जैन परम्परासे विपरीत जाता है।

आचार्यश्री—पुरातनकालीनसे नहीं, मध्यकालीन से। पुरानी जैन परम्परा तो यही थी। संयमोपवर्द्धक दानके अतिरिक्त अन्य किसी भी दानको उसने अध्यात्मदान नहीं माना। किन्तु मध्ययुगमे ऐसी स्थिति आई, जबकि येन केन प्रकारेण याचकोंको कुछ न कुछ दे देना ही धर्म-कोटिमे माना जाने लगा। सम्भव है समाजशास्त्रियोंने समाजकी आवश्यकताओं की पूर्तिके लिए इसको धर्मसे जोड दिया हो। प्रबल परिस्थितियोंके वेग तथा अन्य संस्कृतियोंके प्रसार-पूर्ण वातावरणसे जैन भी अपनेको अछूता नहीं रख सके। उनको भी लोक-प्रवाहमे बहना पडा। दीन दुखियोंको दिये जानेवाले दानको उन्होंने भी पुण्य दानमे समाविष्ट कर लिया।

प्रोफेसर—ये सिद्धात बडे सूक्ष्म एवं बारीकीपूर्ण हैं। आपकी दान-परम्परा भिक्षाविरोधी युगके लिए बहुत उपयोगी है।

स्फुट प्रसंग

आचार्यश्री के दैनिक क्रममे योगासन भी एक प्रवृत्ति है। समयकी खींचातानमे आप प्राय. उसके लिये समय निकालते हैं। हलासन, सर्वांगासन, पद्मासन, बद्धपद्मासन, ये आपके प्रिय आसन हैं।

योगासन और आसन प्रयोग

अधिक औषध-सेवन को आप बहुत बुरा मानते हैं। यथा-संभव आप औषधि नहीं लेते। जुकाम, ज्वर आदि साधारण स्थितिका प्रतिकार प्राकृतिक साधनोंसे ही करते हैं। प्राकृतिक चिकित्साके प्रति आपका विश्वास है।

आप बहुत बार साधु-परिषद्में यह समझाते है कि अगर मात्रा और सख्यामें कम वस्तुएँ खाईजाएं तो दोषज रोग होने

की विशेष संभावना ही नहीं रहती। आप अधिक वार संख्या मे ५-७ चीजोसे अधिक नहीं खाते-पीते हैं। उनकी भी मात्रा इतनी परिमित होती है कि दूसरोंको आश्चर्य हुए बिना नहीं रहता। व्यवहारमे उपवासकी अपेक्षा ऊनोदरी* करना कठिन है। आपकेलिए वह सहज वनगया, इसमे कोई सन्देह नहीं।

बीकानेर स्टेटमे ओसवाल समाजमे 'देशी-विलायती' का ऐसा दुर्भाग्यपूर्ण सामाजिक कलह पैदा हुआ, जिससे समाजको अकल्पनीय क्षति उठानी पड़ी। और क्या, उससे समाजकी शृङ्खला टूटगई, नींव हिल-सी गई। वर्षों बाद वह ठण्ढा पड़गया, फिर भी उसके बीज निर्मूल नहीं हुए। सामूहिक भोजन आदिके भेद-भाव नहीं मिटे। आखिर उसकी समाधि के दिन आये। ९९ के चूरू-चौमासेमे आपने इस कार्यको हाथमे लिया। लोगोंको समझाया। एकता और संगठनकी आवश्यकता बताई।

असंगठन की चिकित्सा—क्षमायाचनाका महान् प्रयोग

आपने कहा—और सब जाने दो, विश्वमैत्रीके महान् प्रतिष्ठाता भगवान् महावीरके अनुयायी यों अमैत्री रक्खें, यह शोभा नहीं देता। भगवान् महावीरने हमें अमैत्रीको मिटानेका ऐसा सुन्दर मार्ग दिखाया है, जिसमें किसीको मानसिक असुविधा भी नहीं होती। सूत्रोंकी भाषामें वह है 'क्षमत-क्षमापणा'। सीधे

---

* भूख से कम भोजन

शब्दों में—अपना रोप शान्त करना और अपने प्रति रोप हो, उसे मिटाने की प्रार्थना करना। दोनों व्यक्ति समान भूमिका पर क्षमत और क्षमापण करें। वहाँ हल्की-भारी, ऊँची-नीची रही, इसका कोई प्रश्न ही नहीं उठता।

दोनों दलो के व्यक्ति आचार्यश्री से मार्ग-दर्शन पा कलह का अन्त करने को तैयार हो गये। थोडे दिनो बाद आचार्यश्री के समक्ष दोनो ओर के व्यक्ति आगये। आचार्यश्री ने उन्हें फिर 'मैत्री' का महत्त्व समझाया। एक गीतिका रची। उसके द्वारा लोगोंको मैत्री के संकल्प को दृढ बननेकी प्रेरणा दी। उसके कुछ पद्य यों हैं —

"क्षमत क्षमापण सप्ताक्षरनो,
अर्थ अनाखो झाको।
परनो खमण नमण तिम निजनो,
भ्रमण मिट उभया को॥
भूलो भूतकालनी भूलो,
आगामी अनुकूलो।
थारी म्हारी हल्की भारी,
मत को झगडै झूलो॥
कादा छूत उखंल्यां सेती,
मूल हाथ नहि आवं।
होय सरल चित सद्गुरु आगल,
गुणिजन मुनह खमावं॥"

आचार्यश्री की अन्तर-आत्मा ने लोगों को इतना खींचा कि सब पिछली काली पंक्तियोंको भूलकर एकमेक हो गये। चारों ओर ,'खमत-खामणा' की ध्वनि गूँज उठी। समाजके शिरकी वह अशुक्ल रेखा सदाके लिए मिट गई। वह आश्विन शुक्ला १३ का दिन था! वह कलह चूरूसे ही उठा था और उसकी अन्त्येष्टि भी वहीं हुई, यह एक स्मरणीय बात है।

आचार्यश्रीका जीवन आध्यात्मिक तथ्योंके परीक्षणकी एक विशाल प्रयोगशाला है। बोल-चाल, रहन-सहन, बात-व्यवहार, खान-पान आदिमे संयमका अनुत्तर विकास कैसे किया जाय? यह प्रश्न आपके मनकी परिधि का मोह छोडता नहीं। अपनी वृत्तियोंसे दूसरो को कष्ट न हो, इतना ही नहीं किन्तु अपने आप में भी इन्द्रियाँ और मन अधिक समाधिवान् रहें, इसी भावनासे आपका चिन्तन और उसके फलित प्रयोग चलते ही रहते है। यों तो आपने समूचे गणको ही प्रयोग-केन्द्र बना रक्खा है।

आध्यत्मिक प्रयोग

गणकी व्यवस्था करनेमे प्रायश्चित्त और प्रोत्साहन ये साधन उपयोगमें आते है। गलती करनेवालेको उलाहना कम या अधिक, रूखे शब्दोंमे या मृदु शब्दोंमें, एकान्तमे या सबके सामने कैसे दियाजावे—इन विकल्पोंका आप एक-एक गण-सदस्यपर प्रयोग करके देखते है। जिस प्रयोगका जिसपर स्थायी असर होता है, अपनी भूलोंसे छुट्टी पानेकी शक्ति पाता है, उसकी विशुद्धिमे उसी का प्रयोग होता है। तपस्या, उपवास आदि प्रायश्चित्त के विविध

पहलुओकी भी यही बात है। कईवार इस तथ्यको पकड़नेमे साधुओंको भी सन्देह हो जाता है। कठोरताकी आशंकामे मृदुता और मृदुता कीं आशंकामें कठोरता या वे कभी-कभी सोचने लगते हैं कि क्या वात है ? आचार्यश्री कठोरताको काम मे ही नहीं लाते, और कभी-कभी यह अनुभव होने लगता है कि आपके पास मृदुता नामकी कोई वस्तु है ही नहीं।

प्रोत्साहनके दोनों अंग प्रशंसा और अनुग्रहकी भी यही गति है। किसोको साधारण कार्यपर ही प्रशंसा या अनुग्रह अथवा दोनोंसे प्रोत्साहित कर देते हैं तो कोई असाधरण कार्य करके भी कुछ नहीं पाता।

आचायश्री ने एक वार अपनी कार्यप्रणाली पर प्रकाश डालते हुए कहा —

"मेरे कार्यक्रमका मूल आधार है व्यक्ति का विकास। मैं जिसप्रकार जिस व्यक्तिके लाभ होता देखता हू, उसके साथ उसी तरीकेसे वरतता हूँ। इसलिए इसमे किसीको अधिक कल्पना करनेकी जरूरत नहीं है।"

आहारसे प्रयोग निरन्तर चलते हैं। कईबार दो-दो सप्ताह तक आपके आहारमे सिर्फ शाक-रोटी ही होती है। अमुक वस्तु खाने या न खानेसे शरीर तथा मन पर क्या असर होता है, इसकी एक लम्वी सूची आपके अनुभव मे है।

आहार-प्रयोग

स्वाद-वृत्ति साधुके लिए निषिद्ध है, वह तो है ही, उसके

अतिरिक्त आपने खान-पानके सम्बन्धमे वाणी और मन पर जो नियन्त्रण कर रक्खा है, वह 'तच्चित्रम्' जैसा है। शाकमे नमक अधिक या कम हो, दूसरी कोई वस्तु कैसी ही हो, उसके बारेमे आहार कर चुकनेसे पहले कुछ कहना तो दूरकी बात किन्तु भाव तक नहीं जताते।

आपकी शिक्षामे बार-बार यही स्वर मिलता है :—

"भोजनके सम्बन्धमे अधिक चर्चा करना— अच्छा बुरा कह गृद्ध होना, नाक-भौंह सिकोडना मैं गृहस्थके लिए भी ठीक नहीं मानता, साधुके लिए तो यह सर्वथा अवाञ्छनीय है।"

आत्म-निरीक्षणसे आचार्यश्रीका नैसर्गिक प्रेम है। आपने आत्म-निरीक्षण एक बार बाल साधुओंको शिक्षा देते हुए कहा :—

"छद्मस्थसे भूल हो जाय, यह कोई आश्चर्य नहीं। आश्चर्य वह है, जो भूलको भूल न समझ सके। प्रत्येक व्यक्ति अपने आपको सम्हाले, अपनी भूलोंको टटोले। भूल सुधारका यही सर्व-श्रेष्ठ साधन है। भगवान् महावीरके शब्दोंमे :—

'से जाणमजाण वा,
कट्टु आहम्मियं पयं।
संवरे खिप्पमप्पाणं,
बीअं तं न समायरे ॥

अर्थात् जानमे, अजानमे कोई अनाचरणीय कार्य हो जाय तो साधुको चाहिए कि तुरन्त अपनी भूल देखे, आत्माका संवरण

करे, भविष्यमें फिर वह कार्य कभी न करे।"

आत्म-नियन्त्रणके लिए आपने 'दशवैकालिकसूत्र' की दो चूलिकाएं नियुक्त कीं। संयमीके लिए उनका वह स्थान है, जो घोड़ेके लिए लगाम, हाथीके लिए अंकुश और नौकाके लिए पताका का है। आपका मानस समुद्रके समान है, जो कि मर्यादामे रहते हुए भी उत्ताल उर्मियोंका साथ नहीं छोड़ता। पौद्‌गलिक पदार्थों के प्रति आप जितने सन्तुष्ट हैं, उससे कहीं आत्म-जागरणके प्रति असन्तुष्ट हैं। इसी असन्तुष्टिसे 'आत्मचिन्तनम्', 'चिन्तनके तेरह सूत्र' और 'कर्तव्य-षट्-त्रिंशिका' जैसे प्रसन्न मार्ग आपके द्वारा साधुओंको मिले।

गृहस्थोंके प्रति भी आप उदासीन नहीं है। उनके लिए भी आपने 'आत्म-निरीक्षणके तिरेपन बोल' लिखे। आपके अविरत प्रयत्नोंसे इस दिशामे एक नया स्रोत चला है। सिद्धान्तकी भाषा में कहू तो आध्यात्मिक चेतनाकी उत्क्रान्ति हुई है।

विरोधको हंसते-हंसते सहना यों तो तेरापन्थका नसर्गिक भाव है, उसमे भी आचार्यश्रीकी अपनी निजी विशेषता है। आप न विरोधसे घबड़ाते हैं और न उसे बढ़ावा देते। किन्तु उपेक्षाके द्वारा उसे निस्तेज बना देते हैं।

विरोधके प्रति मैत्री

क्षमा और शान्तिके उपदेशका दूसरो पर कैसा असर होता है, वह आप एक छोटी सी घटनासे जान सकेंगे —

आचार्यश्रीने धर्मप्रचारके लिए काठियावाड़ (सौराष्ट्र) में

साधुओंको भेजा। वहा कई जैनोंने कडा विरोध किया। वाता-वरण काफी उग्र बन गया। उन दिनों वहासे रतिलाल मास्टर आचायश्रीके दशन करने आया। वह वहाँ साधुओंके विहार का प्रेरक था। इसलिए कई प्रकारकी कल्पनाओंको लिए हुए आया। सकुचाते हुए आचार्यश्रीके दर्शन किये। आचार्यश्री ने पूछा—कहिये क्या बात है ? प्रचार-कार्य ठीक चल रहा है ? मास्टरने उत्तर देते हुए कहा—महाराज। काम ठीक चल रहा था किन्तु विरोधी वातावरणके कारण वह कुछ धीमा हो चला है और साधुओंको भी बडी कठिनाइयां झेलनी पड़ रही है। आपने पूछा—साधुओंमे कोई घबड़ाहट तो नहीं हैं ? मास्टरने कहा—नहीं, बिलकुल नहीं। आचार्यश्रीने कहा—अपनी ओरसे पूर्ण शान्ति रहनी चाहिए। अपना मार्ग शान्तिका मार्ग है। विरोध विरोधसे नहीं, शान्तिसे ही मिटेगा। आचार्यश्रीकी उपदेश-वाणी सुन रतिलाल भाई बोला—गुरुदेव। मैं इस धारणाको लिए हुए आया था कि वहाँ पहुंचते ही आचार्यश्री मुझे उलाहना देंगे। काठियावाडमे साधुओंके साथ जो व्यवहार किया जारहा है, उसके कारण आचार्यश्रीके मनमे अवश्य रोप होगा। किन्तु यहाँ आनेपर मुझे कुछ और ही मिला। आप प्रत्युत हमे शान्ति रखनेका उपदेश दे रहे है।

इसका उसके मनपर इतना असर हुआ कि वह आचार्यश्री के प्रति गाढ निष्ठावान् बन गया।

सं० २००५ की बात है। मुनिश्री घासीरामजी और मुनिश्री

डूगरमलजी ये दो सिंघाडे काठियावाड (सौराष्ट्र) मे थे। विरोध काफी प्रबल था। चौमासा नजदीक आगया, फिर भी स्थान न मिला। चौमासा कहाँ हो, इसकी बडी चिन्ता हो रही थी। वहाँसे कई व्यक्ति चाडवास पहुचे। आचार्यश्रीसे सबकुछ निवेदन किया।

आत्म-बल और सात्त्विक प्रेरणाएँ

आप कुछ क्षण मौन रहे। उनके मनोभाव कुछ असमञ्जस थे। क्या होगा ? इसकी कुछ चिन्ता भी थी। किन्तु आचार्यश्रीने इस भावनाको तोडते हुए कहा —

"यद्यपि वहाँ साधु-साध्वियोको स्थान और आहार-पानीके लिए बडी कठिनाइयाँ झेलनी पडरही है, फिर भी उन्हे घवडाना नहीं चाहिए। मुझे विश्वास है, मेरे साधु-साध्विया घवडाने वाले है भी नहीं। उन्हें भिक्षुस्वामीके आदर्शको सामने रखकर दृढताके साथ कठिनाइयोका सामना करना चाहिए। जहाँ कहीं जैन, अजैन, हिन्दू, मुस्लिम कोई स्थान दें, वहाँ रहजाऍ अगर कहीं न मिले तो श्मशानमे रहजाएँ। उन्हें वहाँ रहना है, सत्य-अहिंसात्मक धर्मका प्रचार करना है।"

आचार्यश्रीके इन स्फूर्तिभरे शब्दोंने न केवल खिन्न श्रावकोंमे चैतन्य ही उँडेल दिया, वल्कि साधुओंको भी इससे वडी प्रेरणा मिली। वे सव कठिनाइयोंके वावजूद भी अपना लक्ष्य साधते रहे।

चौवीस दिन पूरे वीतगये। फिर भी पार्श्ववर्ती साधु कुछ समझ नहीं सके। आचार्यश्रीका अल्पाहार सवको विस्मयमे

डाले हुए था। २५वें दिन यह रहस्य खुला। काठियावाड (सौराष्ट्र) से समाचार आये—लोगोंकी भावनामे यकायक परिवर्तन आया है, चातुर्मासके लिए बाकानेर और जोरावर-नगरमें स्थानका प्रबन्ध हो गया। साध्वी रुपाजीको पहले ही चूडामें स्थान मिल चुका है। और सब व्यवस्था ठीक है। आचार्यश्रीने साधु-साध्वियोंके बीच वहांके साधु-साध्वियोंके साहसकी सराहना करते हुए कहा—देखो वे कितने कष्ट झेल रहे हैं। हमें यहां बैठे-बैठे वैसा मौका नहीं मिलता। फिर भी हमारी और उनकी आत्मानुभूति एक है। इन कई दिनोंसे मेरे अल्पाहारको लेकर एक प्रश्न चल रहा। किन्तु मैं पूरा आहार लेता कैसे ? मेरे साधु-साध्वियां वहां जो कठिनाई सह रहे है, उनके साथ हमारी सहानुभूति होनी ही चाहिए।

आचार्यश्रीकी सात्त्विक प्रेरणासे वहांकी भूमि प्रशस्त हुई, यह पहले किसने जाना।

रतननगरमें ६ विद्यार्थी साधुओंने आचार्यके पास व्याकरणकी साधनिका शुरू की। दिनमे समय कम मिलता था, इसलिए वह रातको चलती थी। साधनिका प्रारम्भ करते हुए आचार्यश्रीने एक श्लोक रचा :—

मनोविनोद

"नव मुनयो नवमुनय,
कर्तु लग्ना नवा हि साधनिकाम्।
नवमाचार्यसमक्षे,
नहि लप्स्यन्ते कथ नव ज्ञानम्॥"

पाठक जानते हैं कि संस्कृत-व्याकरण नये छात्रोंके लिए अति रूखा विषय है। कालुगणीके शब्दमे 'अलूणी शिला' चाटना है। किन्तु नीरसमें रस भरनेकी कला आचार्यश्रीका नैसर्गिक गुण है। साधनिकाके साथ साथ नित नए मनोविनोद चलते रहते। जिससे मिठासके कलेवरमे कडवी घूट भी अरुचिकर नहीं होती। इस प्रसगमें आचार्यश्रीने विद्यार्थी साधुओंका उत्साह बढानेको तत्काल १३ श्लोक रचे, वे बडे स्फूर्तिदायक हैं। मनोविनोदके साथ प्रेरणासे भरेपूरे हैं। यथा —

गुप्तिव्योमाभ्रनेत्राब्दे, मासे फाल्गुननामके।
प्रारब्धा रत्ननगरे, भूतेष्टाया दलेऽसिते ॥१॥
निशाया कालुकौमुद्या, जायते साधुसाधना।
तुलसीगणिन पार्श्वे, रामदुर्गे पुरेऽधुना ॥२॥
नवानाञ्चापि शिष्याणा, क्रियते नामकीर्तनम्।
येनोत्साहो विवर्द्धेत, वालाना पठने ध्रुवम् ॥३॥
कन्हैयालाल एकस्तु, शुभकर्णः शुभेच्छुक।
स्मेरानन सुमेरश्च, मोहनो मुदिताशय ॥४॥
ताराचन्द्रस्तु तूष्णीको, मागीलालोऽल्पलालस।
गुणमुक्तादनो हस, सुखलाल सुखाभिक ॥५॥
रूपोऽन्वेष्टा स्वरूपस्य, सर्वे सम्मिलिता नव।
प्राप्तु विद्योदधेरन्त, गुरावुद्युञ्जते सदा ॥६॥
ज्येष्ठभ्राता मुनिश्चम्पो, वालाना पाठहेतवे।
प्रयत्न कुरुते नित्य, शिक्षाञ्चापयतीप्सिताम् ॥७॥

शिष्या समागता सर्वे, किं कर्तुं साधना शुभाम् ।
भाविनो प्रार्थना पश्चा—दल्पोऽनेहा निरीक्ष्यते ॥८॥
यदा चित्त-प्रसक्ति स्यात्, सुलभा श्लोकनिर्मिति ।
विपर्यासोऽन्यथा स्पष्ट, किं शिष्यैरपि नेक्ष्यते ॥९॥
मध्याह्ने समधीयाते, साध्व्यौ व्याकरण सदा ।
तयोर्धनकुमार्येका, चान्या रत्नकुमारिका ॥१०॥
वृत्तिश्चापरवेलाया—माचाराङ्गस्य पठ्यते ।
सम्मील्य वहुसाध्वीभि, का कामाख्या वदाम्यहम् ॥११॥
लाडा सत्यग्रणी तासा, साहाय्य कुरुते सदा ।
साहाय्यमन्तरेणात्र, विद्यावोधि सुदुर्लभा ॥१२॥
त्रयोदशाना श्लोकाना, निर्माण कृतवानिदम् ।
शीघ्र मनोविनोदाय, शिष्यवोधाय साग्रहम् ॥१३॥

व्यक्ति वड़ा नहीं होता। वडा होता है उसका व्यक्तित्व। वह क्या है ? इसे शब्दोंकी सीमा और परिधिमे वाधना सहज नहीं। फिर भी उपयोगिताकी दृष्टिसे हम मान लेते हैं—व्यक्तित्व यानी जीवनका उपयोग।

महान् व्यक्तित्व

दुनिया स्वार्थी ठहरी। वह उसीका व्यक्तित्व स्वीकार करती है, जिसके जीवनका उसके लिए उपयोग हो। जिसमे उच्च प्रतिभा चरित्र-वल और आकर्पण नहीं होता, वह अपने जीवन-पुष्पको उपयोगके धागेसे नहीं जोड़ सकता। इसलिए हमे व्यक्तित्वका फलित अर्थ करना चाहिए—प्रतिभा, चरित्र और आकर्पणकी असाधारणता।

आचार्यश्री तुलसीका व्यक्तित्व, जो बहुत वर्षों तक अपने आपमे समाये रहा, निखरता जा रहा है। सब क्षेत्रोंमे उसके प्रति पूजा, प्रतिष्ठा और सम्मानकी भावना है। पर क्यों है? इस पर भी एक सरसरी दृष्टि डाललेनी चाहिए।

आप एक सन्त हैं, आचार्य हैं, आध्यात्मिक क्रान्तिके वाहक नेता और अहिंसक समाजके अग्रणी हैं। हमें उनका व्यक्तित्व स्वीकार करनेसे पहले मुडकर देखना होगा कि क्या इस भौतिक युगमे आपके जीवनका कुछ उपयोग है? क्या विद्युत्-यन्त्रोंकी चकाचौंधमे अध्यात्मकी किरणें कुछ कर सकेंगी? इसका उत्तर देना कठिन है, यह नहीं मानना चाहिए।

परिस्थितियोंके उतार-चढ़ावमें रथका पहिया किधर घूमेगा, यह कौन जान सकता है।

आचार्यश्रीने जनताके जीवन-शोधनके लिए चारित्र्यका आश्रयण नहीं किया है। आपके सहज जीवन-शोधनसे जनताको उसकी प्रेरणा मिली है। इसीलिए यह परमार्थकी भूमिकामे रहकर भी जन-जीवनको जगानेवाला महामन्त्र है। अन्न, वस्त्र, मकान आदि सुलभ करनेवाला ही जनताके लिए उपयोगी है, यह मानना उतनी बडी वज्रभूल है, जितनी कि एक वज्रमूर्ख ही कर सकता है।

चारित्र-बलके विना उक्त पदार्थोंसे सिर्फ जीवन चल सकता है, शान्ति नहीं मिल सकती। मानवका ध्येय पशुकी तरह जीवन चलाना ही नहीं होता। उसके लिए शान्ति और विकासके द्वार खुले रहते हैं। हम इस तत्त्वको समझ गये तो आचार्यश्रीके जीवन

का उपयोग समझना बाकी नहीं रहेगा।

भूतवादने मनुष्यको शान्तिकी रट लगानेमे पागल बना रक्खा है। शान्तिके लिए वह युद्धकी चक्कीमे पिसता जा रहा है। युद्धसे मेरा तात्पर्य, दो शत्रु देशोके बीच होनेवाले युद्धसे नहीं, जीवन-व्यापी दैनिक युद्धसे है। एक देश, एक समाज और परिवारके व्यक्ति भी परस्पर गिद्धदृष्टि लगाये बैठे है। एक दूसरेका शोषण और प्रताडन कर रहे है। यह सबसे खतरनाक युद्ध है। बडे युद्ध की आदत इसीसे पडती है। खेद! राष्ट्रवादकी चहारदीवारीमे पलनेवाले बड़े-बडे दिमाग इस ओर नहीं मुडे। मुडनेकी बात ही क्या, दिशा-यन्त्रकी सुई दूसरी ओर घूम रही है। आत्म-शोधनका लक्ष्य नहीं, सिर्फ शासन-सूत्रको ठीक ढंगसे चलानेके लिए चरित्र बल चाहिए। अपने बचावके लिए अहिंसा तथा शोपणका जुआ दूर फेकनेके लिए अपरिग्रह भी बडा मीठा लगता है। दूसरो पर आक्रमण और शोपण करते समय वे याद तक नहीं आते। यही भूतवाद और अध्यात्मवादमे मौलिक भेद है।

अध्यात्मवादमे वे—अहिंसा और अपरिग्रह आत्मौपम्यकी भूमिका पर अवस्थित है। दूसरोके हित-अहितको अपने हित अहितसे तोलना जहाँ अध्यात्मवादकी सूझ है, वहा अपने हितों की रक्षाके लिए अहिंसा, अपरिग्रह और विश्वशान्तिकी बात करना दूसरोके हितको कुचलते समय उन्हें भूल जाना, यह भूतवादकी देन है।

आचार्यश्री तुलसी अपनी सत्प्रेरणाओं द्वारा मनुष्य समाजको

अध्यात्मवादी, दूसरे शब्दोंमे आत्मौपम्यवादी बनाना चाहते हैं। यहींसे उनके जीवनका दिव्य आलोक निखरता है, यहींसे युगको बदलनेवाली व्यक्तिताकी निगूढ सम्भावनाएं हमारी धारणाओंको पल्लवित करती हैं।

हिन्दी जगत्के सुप्रसिद्ध साहित्यकार और विचारक श्री जैनेन्द्र-कुमारने आचार्यश्रीके व्यक्तित्वका नपे-तुले शब्दोंमे विश्लेपण करते हुए *कहा '—

"जैन-आचार्य श्री तुल्सीगणीसे में मिला और उनके व्यक्तित्वसे इतना प्रभावित हुआ कि अति शीघ्र उनके सम्पर्कमें आ गया। मैं तेरापन्थी नहीं हू और जैन भी हू या नही, इसे जैन ही बतला सकते हैं। कोई वाद या मत लेकर नही, वरन् केवल इन्सानके रूपमें तुलसीजी के सामने मे गया पर उनके अन्तरगकी छाप मुझ पर एसी पडी कि मे अपनेको भूल सा गया। तुलसीजो शान्तिप्रिय और बिना किसी वादके व्यक्ति हैं। उनका व्यक्तित्व इस श्रद्धाम पगा हुआ है कि अहिंसा से ही सारी समस्यायें हल हो सकती है। पहले तो मुझ शका होती थी कि अहिंसासे ही सारी समस्याओंका समाधान कैसे सभव हैं परन्तु इसकी तह तक पहुचने पर मेरी शका दूर हो गई। तुलसीजीका यह दृढ विश्वास है कि जीवनका माग अहिंसा द्वारा है, जिसका एक रूप अपरिग्रह है। उनकी इसी विचारधाराकी छाप मेरे ऊपर पडी। अहिंसा और अपरिग्रहमें मेरी श्रद्धा, जो हिलती डुलती सी थी, दृढ हो गई।

---

* जैन-भारती वर्ष १२ सख्या १ जनवरी १९५२

अहिंसा धर्म है और धर्म पर ही दुनियाकी सारी चीजें आधारित है। यदि धर्मका नाश हो जाय तो चमकनेवाले चाद और सूर्यका भी नाश होय। मेरे पास और कुछ नही, एक यही लगन है कि अहिंसासे ही कुछ होनेवाला है। मै जी रहा हू केवल इसी श्रद्धाके बल पर। तुलसीजीसे हमारे सर्वस्वकी रक्षा हो गई। जो अपनेको तुलसीजीका अनुयायी मानते है, वे स्वय अनुभव करते होगे कि तुलसीजीसे उन्हे कितनी शक्ति मिलती है और यदि वे ऐसा नही समझते तो इसका मतलब होगा कि वे तुलसीजीक पास पहुचनेके लिए भेडियाधसान करते है। उनके अनुयायी यह समझते होगे कि उनसे उन्हे कितनी शक्ति मिलती है। उन्हे चाहिए कि वे उनकी शक्तिको अपनमें सन्नि-हित करे क्योकि शक्तिका ही सम्पूर्ण विश्वमे प्रभाव है। उनमे महा-शक्ति है। हमे चाहिए कि शक्ति आये तो हम उसे सोखलें, हम उसका स्पर्श करे। उसी शक्तिमे हम अपना भोग प्राप्त करे। हमे चाहिए कि हम उन महापुरुषकी शक्तिमें अपनी शक्तिको भी मिला दें। जिस प्रकार अन्य नदियोके मिलनेसे गङ्गामे महाशक्ति आ जाती है और अन्य नदिया भी गगासे शक्ति प्राप्त करती है, उसी प्रकार आचार्यश्री तुलसीकी शक्तिमें यदि हम अपना शक्ति भी मिला दे तो महाशक्ति हो जायगी।"

महापुरुषके जीवन-सरोवरमे हंस होकर तैरना, क्षीर-नीर विवेक करना सहज नहीं होता। फिर भी इसमे प्रधान भाव

पूर्ण दर्शन

मानसकी गतिका है। हम प्रत्येक वस्तुको अप-नानेसे पूर्व उसके औचित्यको हृदयङ्गम कर लेते

हैं। दाकी रहती है वात वाणी द्वारा व्यक्त करने की।

मानवका जीवन-प्रासाद आचार-विचारके विशाल खम्भो पर बनता है। सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य और अनाशक्ति ये एक कोटिके है। दूसरी कोटिके है—क्षमा, धर्य, औदार्य, नम्रता, सरलता आदि आदि। आपमे दोनों प्रकारके गुण इस प्रकार छलाछल भरे हैं कि उन्हें समझनेके लिए कविकी कल्पना और दार्शनिकका चिन्तन अधीर हो उठता है।

नैरन्तरिक कठोर श्रम, सुदृढ अध्यवसाय देखते ही वनते हैं। रातके चार वजेसे कार्यक्रम शुरू होता है, वह दूसरी रातके दश वजे तक चलता रहता है। आहारका समय भी किसी अध्यवसाय या चिन्तनसे अधिक वार खाली नहीं जाता। स्वाध्याय, मनन, चिन्तन, अध्यापन, व्याख्यान, आगन्तुक व्यक्तियोंसे वातचीत, इस प्रकार एकके वाद दूसरे कार्यकी श्रृङ्खला जुडी रहती है।

आपमे जन-उद्धारकी विभिन्न उमंगें इस प्रकार उछालें भरती हैं, मानो आकाश-मण्डलको पखारनेके लिए समुद्रकी उर्मिया उछल रही हों।

परिस्थितियोंका सामना करनेकी क्षमता अपना अलग महत्त्व रखती हैं। आपने इस पन्द्रहवर्षीय नेतृत्वमे संघके ऊपर छाई अनेक परिस्थितियोंका अपूर्व कौशलके साथ सामना किया है। इस विषयमे 'कम वोलना, कार्य करते रहना' आपकी यह नीति वहुत सफल हुई है।

बालक, युवा, वृद्ध, सभ्य और ग्रामीण सबके साथ उनके जैसा बनकर व्यवहार करना, यह आपकी अलौकिक शक्ति है।

आप आदर्शवादी होते हुए भी व्यवहारकी भूमिकासे दूर नहीं रहते। आज नई और पुरानी परम्पराओंका संघर्ष चल रहा है। आधुनिक आदमी पुरानी परम्पराको रूढ़ि कहकर उसे तोडना चाहता है। उधर पुराने विचारवाले नये रीति-रिवाजोको पसन्द नहीं करते, यह एक उलझन है। आचार्यश्री इनको मिलानेवाली कडी है। आपमे नवीनता और प्राचीनताका अद्भुत सम्मिश्रण है इसे देखकर हमे महाकवि *कालीदासकी सूक्तिका स्मरण हो आता है :—

"पुराणमित्येव न साधु सर्वं,
न चापि नवमित्यवद्यम्।
सन्त परीक्ष्यान्यतरद् भजन्ते,
मूढ परप्रत्ययनेयबुद्धि ॥

एक विषयको दश बार स्पष्ट करते-करते भी आप नहीं झल्लाते, तब आपकी क्षमा-वृत्ति दर्शकोंको मन्त्रमुग्ध किये बिना नहीं रहती।

आपके उदात्त विचार जनताके लिए आकर्षणके केन्द्र है। कथनी और करनीमे समानता होना 'यथावादी तथकारी' के जैनत्वका द्योतक है। अध्यात्मवादी बिन्दुके आस-पास घूमनेवाले

---

* मालविकाग्निमित्र

विचार व्यावहारिक नहीं होते, यह तथ्यहीन धारणा है। आपने इसे बदलनेको प्रचुर विचार-सामग्री दी है। वह संकलित हो जनताका सही पथ-दर्शन कर सकेगी, हमे ऐसा विश्वास है।

आपने जात-पातके भेदभावसे दूर विशुद्ध आध्यात्मिक भावना की आवाज बुलन्द कर धर्मके लिए नई भूमिका तैयार की है। धर्म से दूर भागनेवाला आजका क्रान्तिकारी युवक एक बार फिर उसकी ओर देखनेके लिए बाध्य हुआ है। साधु समाजके लिए उपयोगी नहीं हैं, इस भावना पर आपने अणुव्रती सघकी स्थापना कर करारा प्रहार किया है। नैतिक व चारित्रिक बलका सहयोग देनेवाला वर्ग समाजके लिए भार नहीं, अपितु उसका उन्नायक होता है।

आपने अपनी व सघ (तेरापन्थ) की साहित्य-साधना, शिक्षा तथा व्यापक प्रचारके द्वारा पूर्ववर्ती जैन-सन्तोके गौरवका पूर्ण प्रतिनिधित्व किया है।

इस प्रकार आचार्यवरके जीवनकी एक झाकी हमारे लिए आनन्द और उल्लासका विषय है। जीवनका पूर्ण दर्शन शब्दावली मे नहीं होता।

आप चिरकाल तक हमारा नेतृत्व करें। अहिंसा-धर्मके आलोकसे विश्वको आलोकित करें।